पद्मनाभ

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई॰
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

पद्मनाभ

लेखक
रामेश्वरदयाल श्रीमाली

साहित्य अकादेमी

Padmnabh: A monograph by Rameshwar Dayal Shreemali in Hindi on the Rajasthani Poet. Sahitya Akademi, New Delhi (1993), Rs. 15.

प्रथम संस्करण : 1993

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23, ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड,
कलकत्ता 700 053
304-305, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास 600 018
ए· डी· ए· 109, जे· सी· मार्ग, बंगलौर 560 002

मूल्य : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-7201-340-X

लेज़र-टाइपसेटिंग : अक्षरश्री, विश्वास नगर, दिल्ली 110 032
मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

अध्याय एक

कवि-परिचय

प्रारंभ से ही भारतीय कवि अपने सम्बन्ध में कुछ भी लिखने से बचते रहे हैं। आत्मश्लाघा को समस्त भारतीय जीवन में इतना निन्दनीय माना गया है कि कविगण आत्मश्लाघा तो दूर, आत्मपरिचय तक देने से कतराते रहे। यद्यपि रुद्रट जैसे आचार्यों ने कवियों को अपना एवं अपने कुल का संक्षिप्त परिचय देने के स्पष्ट निर्देश दिये हैं—

'श्लोकैर्महाकथाभिष्टान् देवान् गुरुन्नमस्कृत्य संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया।'

तथापि भारतीय कवियों ने आचार्य रुद्रट के इन निर्देशों की प्रायः अवहेलना ही की है।

भारतीय साहित्यकार जिस उदात्त प्रेरणा से कवि-कर्म करते रहे हैं, उसमें नश्वर देह के सम्बन्ध में परिचय देना उन्हें सर्वथा व्यर्थ प्रतीत होता था। वाल्मीकि, पाणिनि, और भास ही नहीं, चंदवरदायी, तुलसी, सूर और कबीर यहाँ तक कि रीतिकाल के कवि बिहारी, घनानन्द और भूषण ने भी अपने सम्बन्ध में सविस्तार तो क्या साधारण परिचय के तौर पर भी बहुत कुछ नहीं लिखा। कवि पद्मनाभ भी भारतीय कवियों की इस परम्परा से परे नहीं हैं। उस काल के लोकभाषा के साहित्य की स्थितियाँ भी ऐसी रही होंगी कि उनके समकालीन अथवा उत्तरकाल के कवि भी पद्मनाभ के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिख सके।

मेरी धारणा है कि भक्त लोग तो संभवतः इसलिये अपने संबंध में चुप हैं कि अपने आराध्य के सामने वे अपना कुलगोत्र क्या बताएँ? उनके आराध्य सब कुछ जानते जो हैं! किंतु राज्याश्रित कवि अपने संबंध में इसलिये कुछ नहीं कह सके होंगे कि एक ओर तो सामन्ती संस्कारों के वशीभूत राजा लोग अपने कुल-गोत्र एवं अपने पूर्वजों की महनीयता के समक्ष बेचारे कवियों को सदैव तुच्छ समझते रहे होगें; दूसरी ओर अभावों से जूझते कवि-गण भी हीनभाव से इतने ग्रस्त रहे होंगे कि उनकी समझ में वे जिस महान् राजकुल का गौरव-गान कर रहे हैं तो उनके महान् कुल-गोत्र के समक्ष उनका अपना साधारण-सा कुल-गोत्र कैसे गणनीय हो सकता है? इस हीन-भाव से ग्रस्त बेचारे कविगण अपने

आश्रयदाता राजा के समक्ष अपने एवं अपने कुल के सम्बन्ध में क्या कहते ?

वस्तुतः कवि कर्म चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, वह राजसत्ता एवं राजनीति के समक्ष सदैव महत्त्वहीन समझा गया है। श्री रावत सारस्वत के साथ इन पंक्तियों के लेखक ने जयपुर में अवस्थित स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी रहे कुछ साहित्यकार मित्रों से इस हेतु साक्षात्कार लिये थे कि स्वतंत्रता संग्राम में साहित्यकार की भूमिका कितनी अहम् रही थी ? सभी स्वतन्त्रता सेनानी साहित्यकारों ने यद्यपि साहित्य की भूमिका को अप्रतिम माना था, किंतु उन्होंने अपना महत्त्व मात्र भीड़ एकत्रित करने के लिए ही माना था। उन्होंने एक स्वर से स्वीकार किया था कि जनता पर वास्तविक प्रभाव राजनेताओं का ही था। जन सभाओं में जनता पर साहित्यकारों का प्रभाव अपेक्षाकृत न्यून रहा। आज स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात् बौद्धिकता के इस युग में भी हम देखते हैं कि राजनेताओं की तुलना में साहित्यकारों के जीवन पर नगण्य-सा ही लिखा जा रहा है जबकि आज का साहित्यकार राज्याश्रय पर तो जीवित नहीं ही है। आज तो वह विशुद्ध विशुद्धतः मसि-जीवी है। उस समय की कल्पना कीजिये जब जीविका का स्रोत ही राज्याश्रय था, बेचारा कवि अपने बारे में कैसे और कितना लिख पाता ? किसी भी कवि ने चाहे अपने संबंध में कुछ भी नहीं लिखा हो, तथापि जैसे पुष्प का परिचय उसकी सौरभ ही है वैसे ही कवि का परिचय भी उसका काव्य ही है, कुल गोत्र नहीं। कवि का काव्य उसके संबंध में जितना गहन परिचय दे सकता है, माता-पिता के कुल गोत्र, जन्म की तिथियाँ एवं निवास-स्थान उसके संबंध में कहकर भी कुछ भी नहीं कह सकते। बहिर्साक्ष्यों के सर्वथा अभाव-वश पद्मनाभ के जीवन के संबंध में अधिक कुछ भी कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। हम तो पद्मनाभ के जीवन के संबंध में मात्र कुछ अनुमान ही लगा सकते हैं।

तेरहवीं शताब्दी के प्रबंधों में ब्रह्मभट्ट, द्वारभट्ट, बंभ आदि नामों से कवियों की रचनाएँ बहुलता से प्राप्त होती हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मण जो ब्राह्मणत्व से संबंधित कर्म यजन-याजनादि छोड़कर विरुदगायन की ओर प्रवृत हुए होंगे, ब्रह्मत्व के हीनार्थकप्रयोग 'बंभ' को प्राप्त हुए होंगे। यही संज्ञा कालान्तर में स्तुतिवाचकों के प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर स्तुतिपरक अर्थ में भी प्रतिष्ठित हुई होगी।

कान्हड़-दे प्रबंध में पद्मनाभ ने अपने जीवन के संबंध में जो कुछ सूचनाएँ दी हैं, वे इतनी अल्प हैं कि उनकी सहायता से कवि के जीवन के संबंध में कोई निश्चित रूप-रेखा निर्मित नहीं की जा सकती। अंतर्साक्ष्यों के आधार पर हम तो मात्र इतना कह सकते हैं कि पद्मनाभ इतने विनयपूर्ण भाव से ओत-प्रोत थे कि उन्होंने सरस्वती एवं गणेश वंदना के पश्चात् अपना परिचय न देकर अपने लिये मात्र निर्मलबुद्धि की याचना की है—

गौरीनन्दन की वीनवूं, ब्रह्म सुता सरसत्ती।
सरस बंध प्राकृत कवूं, द्यउ मुझ निर्मलमत्ति ॥

पद्मनाभ जाति से नागर ब्राह्मण थे। अपने ब्राह्मणत्व पर उन्हें गर्व था। यही कारण है कि अपने ब्राह्मण होने का उन्होंने अनेक बार उल्लेख किया है—

"बीसल नगरउ नागर एक।"
"पद्मनाभ कवि पुण्य विवेक।"
"बोलइ पद्मनाभ कवि बंभ।"
"पद्मनाभ पंडित इम कही।"
"पद्मनाभ पंडित मति कही।"

पद्मनाभ ने यत्र-तत्र स्वयं को पंडित, सुकवि एवं बंभ कहा है। उन्होंने अपनी वाणी एवं वचनों को 'सुरंग' कहकर यह भी विश्वास व्यक्त किया है कि उन्होंने सोनगरों की कीर्ति का वर्णन भली भांति किया है —

पद्मनाभ पंडित सुकवि, वाणी वचन सुरंग।
कीरति सोनिगिरा तणी तिणि उच्चरी सुचंग ॥

पद्मनाभ का अपनी वाणी एवं वचनों को सुरंग कहना सर्वथा युक्ति-युक्त है क्योंकि साहित्य की उदात्त भावनाओं में वे ही वचन सुरंग कहलाए जायेंगे जो राष्ट्र-गौरव एवं राष्ट्रधर्म की रक्षा के लिये सर्वस्व समर्पित करने की भावना को जागृत एवं उत्प्रेरित करते हों। पद्मनाभ का काव्य देश-भक्ति की महत्तम वरेण्य रचनाओं में से है।

यद्यपि पद्मनाभ अखैराज के दरबार में प्रशस्ति गान कर रहा है, लेकिन यह प्रशस्ति गान न तो अखैराज का है, न अखैराज की प्रसन्नता के हेतु ही है। यह तो स्वान्तः सुखाय है। कवि की याचना सामान्य याचकों की याचना से अलग और अद्भुत है। कवि ने मंगलाचरण में वासुदेव की विनती करते हुए मन के आनन्द को प्रमुखता से माँगा है—

जिणि जमुंनाजल गाहीउं, जिणि नाथीउ भूयंग।
वासुदेव धुरि वीनवूं, जिम पामूं मन-रंग ॥

कृष्ण की यमुना के श्याम रंग में अवगाहन एवं भुजंग के नाथने की बात कहकर कवि ने पापाचार में लिप्त भयंकर शुत्र पर अपने काव्यनायक की विजय की सुन्दर किंतु प्रतीकात्मक भूमिका प्रस्तुत की है। अवश्य ही पद्मनाभ मनमौजी कवि रहा होगा, क्योंकि कोई भी रससिद्ध कवि मन की मौज के अतिरिक्त और भला क्या माँगेगा ?

कवि पद्मनाभ ने स्वयं को विसलनगर का निवासी नागर ब्राह्मण बताया है —

"वीसलनगरउ नागर एक,
पदमनाभ कवि पुण्यविवेक"

विसलनगर गुजरात में अवस्थित है। जालौर गुजरात से न केवल भौगोलिक रूप से अपितु सांस्कृतिक रूप से भी जुड़ा हुआ है। निश्चय ही पद्मनाभ गुजरात के विसलनगर से आकर अखैराज के दरबार में रहा होगा। डा· कान्तिलाल बलदेवराम व्यास ने इस तर्क को निराधार बताते हुए कहा है कि नागर जाति गुजरात से होकर सुदूर उत्तर प्रदेश तक विस्तृत रूप से फैली हुई है। उन्होंने बताया है कि दिल्ली तथा आगरा में, बड़नगर में तथा अन्यत्र स्थानों में भी नागर जाति के परिवार रहते हैं। संभवतः गुजरात से प्रवास कर बहुत पूर्व में ही वहीं बस गये हैं अतएव मात्र जाति के आधार पर ही कवि पद्मनाभ का तत्काल विसलनगर से जाकर जालौर में बसना बताना समुचित प्रतीत नहीं होता।

भले ही कहीं का भी निवासी रहा हो, यह निश्चित ही है कि पद्मनाभ नागर जाति का ब्राह्मण था। उसे 'पुण्यविवेक' का विरुद प्राप्त था। वह अपने समय में सुकवि तथा पंडित के रूप में प्रसिद्ध था एवं अपने समय का अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि था। कवि ने अपनी रचना के संबंध में पूर्ण आत्मविश्वास से कहा है कि 'पुण्यविवेक' का विरुद धारण किये हुए कवि की बुद्धि न केवल साधारण जनों का अपितु कवि-जनों का भी मनोरंजन करने वाली है —

वीसल नगरउ नागर एक, पदमनाभ कवि पुण्य विवेक।
एहवुं विरद आदरइ अनी, लहइ बुद्धि कविजनरंजनी ॥

अपनी रचना के विषय में कवि की इस उक्ति में लेशमात्र भी अत्युक्ति नहीं है। कोई रस सिद्ध कवि ही अपनी कविता के संबंध में ऐसी गर्वपूर्ण उक्ति कह सकता है।

कवि पद्मनाभ बहुश्रुत कवि है। उसे तत्कालीन इतिहास एवं भारतीय भूगोल के विषय में अद्भुत रूप से विपुल ज्ञान था। उसने अनेक तत्कालीन राज्यों की परिगणना की है। निकटस्थ गुजरात के खम्भात, अणहलपुर, दीवगढ, मांगलहुर, झालावाड़, मरहट (महाराष्ट्र), लाडदेस, सिन्धु, मालव, चंदेरी, माण्डव, सारंगहुर, जमुनापुर, मथुरा, अन्तर्वेद, काकपुर, भोजपुर, उडीसा, पंड्याराज्य, जालन्धर, काश्मीर, कायद, हिमाचल, खुरासान, मुल्तान, चीन, मोडासा, ढोरसमुद्र, तैलंग, देवगिरी, सिंहीद्वीप, जावा, सेतुबंधरामेश्वर, भूटान आदि विविध प्रदेशों एवं उनकी भौगोलिक स्थितियों का भी कवि को सम्यक्ज्ञान था। दृष्टान्त के लिए—

कलवगुंद्र नइ आनागूंदी, बेदरदेस तिलंग।
वुहुरइ सान पान जिहां पहिरीइ, वाजी बेलइचंग ।।

इस छंद में उसने कनार्टक के अत्यन्त प्राचीन नगर कलवगुंद्र, आनागूंदी, प्राचीन हैदराबाद के एक प्रदेश वेदर एवं तैलंगाना तक के प्रांतों का न केवल नामोल्लेख भर किया है बल्कि पद्मनाभ ने बड़ी शान से वहाँ के निवासियों में सोना-पन्ना पहनने के रिवाज, उनकी समृद्धि एवं वहाँ की श्रुतिमधुर भाषा का भी उल्लेख किया है। इन समस्त वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि कवि न केवल तत्कालीन भूगोल से बल्कि तत्कालीन समाज शास्त्र, समाज के विभिन्न स्तरों के खानपान, रीतिरिवाज, वस्त्राभूषण, एवं बोलचाल से भी सुभिज्ञ था। कवि को इतिहास के साथ-साथ पुराणों का भी गंभीर ज्ञान था। कवि ने कान्हड़-दे प्रबंध की कथा में अनेक स्थानों पर अपने पौराणिक ज्ञान को गुंफित किया है। रामायण की कथा शिवपुराण से संबंधित चरित्र एवं विष्णुपुराण से संबंधित कथाएँ यथा-स्थान उसके काव्य में गुंफित हुई हैं। पद्मनाभ को न केवल धर्मशास्त्रों का गंभीर ज्ञान है अपितु उसने अनेक स्थलों पर धर्म एवं अधर्म की गंभीर व्याख्याएँ भी की हैं। पद्मनाभ को राजदरबार की रीतिरिवाजों का सम्पूर्ण ज्ञान तो है ही, उसे क्षत्रीय कुलों, तत्कालीन शस्त्रास्त्रों, राजदरबार की दैनन्दिन-चर्याओं, विभिन्न कूटनीतिक रीतियों, युद्धनीतियों आदि का भी सम्यक् ज्ञान है। उसने सेना के प्रयाण का जैसा सविस्तार एवं सांगोपांग वर्णन किया है वह वर्णन कोई ऐसा कवि ही कर सकता है जिसने स्वयं भी सेना के साथ प्रयाण किया हो। उसे सेना के भोजन, विश्राम, मनोरंजन-विधि आदि का भी सम्यक ज्ञान था और इस ज्ञान को उसने अपने प्रबंध में भली-भाँति प्रदर्शित किया है। पद्मनाभ ने बंदियों की दुर्दशा का जैसा वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। युद्ध के समय काठगढ़ का निर्माण, विपक्षी दूतों को दिया जाने वाला सत्कार एवं पुरस्कार, स्वाभिमानी क्षत्रियों द्वारा अपने राजा के अतिरिक्त और किसी को प्रणाम न करने की प्रतिज्ञा, राजनीतिज्ञों के मध्य होने वाले संवाद एवं चतुरंगिणी सेना के प्रत्येक अंग के संबंध में भी पद्मनाभ का ज्ञान अत्यन्त व्यापक एवं चमत्कृत करने वाला है। उसे शालिहोत्रशास्त्र, जीवनशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, संस्कृति एवं राजवंशों का भी गुरु गंभीर ज्ञान है। उसने सोलंकी, राठौड़, परमार, वारड़, हूण, यादव, वीहल, निकुम्भ, गोहिल आदि राजवंशों का अत्यन्त उत्साह से वर्णन किया है। उसे सेना में जासूसी करने, फरमान जारी करने, तथा दूसरे दल के लोगों को अपनी ओर मिलाने संबंधी भेद नीतियों का भी व्यापक ज्ञान है। उसने युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों एवं सामन्तों के नाम एवं स्थान भी गिनवायें हैं। स्वयं युद्धविद्या से सुभिज्ञ होने के नाते उसने युद्ध-कला का अत्यन्त विशद एवं जीवंत चित्रण किया है—

लोहां तणीऊकाटकडिऊडी, यंत्रि पुहतउ सूर।
समरंगणी नीसांण ध्रसूक्या रणकाहल रणतूर ।।

× × × ×

वीरहाक वाजी गयणांगणि, सींगिणिना गुण गाजइ ।
भाला अणीय कणस तरुयारइ, ऊछीना घाऊ वाजइ ।।

× × × ×

वीज तणि परि लोह झबूकइ, थरहर कायर कांपइ ।
पाछउ पाय नीमूंकइ पायक, भूमि आगिली चांपइ ।।

कवि अपनी कविता के प्रति भी सगर्व कहता है कि उसकी कविता के प्रसाद से बुद्धि-रस की प्राप्ति होती है। कवि कहता है कि उसने ऐसी एक हजार एक सौ चौपाईयों को छन्दोबद्ध किया है जिसे सुनकर श्रोताओं की समस्त देह उल्लसित होती है। उसके दोहे, चौपाईयाँ एवं गीत नवनीत की भाँति सुकोमल एवं मिश्री की भाँति मधुर हैं।

धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिये तत्पर होने के कारण कवि ने अपने चरित नायक कान्हड़-दे को कृष्ण का अवतार घोषित किया है वहीं राष्ट्रवंदना से अभिप्रेरित होने के कारण उसने अपने काव्य को धर्मग्रन्थ की भाँति प्रतिपादित करते हुए घोषणा की है कि जो कोई पाठक इस ग्रंथ को पढ़ेगा उसे वे समस्त फल प्राप्त होगें जो फल किसी धार्मिक-कृत्य संपादित करने अर्थात् जप-तप, दान एवं तीर्थाटन से प्राप्त होते हैं।

पद्मनाभ की लोकप्रियता

इस संभावना की पृष्ठभूमि में कि पद्मनाभ अपने समय का अत्यन्त लोक-प्रिय कवि रहा लोगा, पर्याप्त तार्किक कारण हैं। इस रचना का निर्माण इतिहास के उस अँधेरे कालखण्ड में हुआ, जब बाह्य आक्रमणों के भय से सन्त्रस्त राज्यों के शासन-तंत्र निरंतर युद्धरत रहे और केन्द्रीय सत्ता में निरंतर परिवर्तन के परिणामस्वरूप राज्य और समाज में अस्थिरता के वातावरण की व्याप्ति रही। साहित्य और कला के विरोधी इस युग के वातावरण में राष्ट्रीय गौरव गान की यह महागाथा लोक-मानस में निरंतर गूंजती रही और काव्यरसिक-जन इसकी एक के बाद दूसरी प्रतियाँ बनाते रहे।

कान्हड़-दे प्रबन्ध की प्रतियाँ

संवत 1512 विक्रमी में रचित कान्हड़-दे प्रबंध की अब तक प्राप्त ग्यारह प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति अनन्तनाथजी मंदिर, बंबई के जैन ज्ञान भंडार से प्राप्त हुई, जिसे प्राचीन गुजराती भाषा एवं साहित्य के मर्मज्ञ-विद्वान् डा· कांतिलाल बलदेवराम व्यास ने ढूँढ निकाला। अनन्तनाथजी मंदिर, बंबई के ज्ञान भंडार की यह पाण्डुलिपि विक्रम सं० 1598 में उस जालोर में ही लिपिकृत है, जहाँ कवि पद्मनाभ ने वि-सं० 1572 में इसकी रचना की थी। डा· व्यास के मतानुसार यह स्वयं कवि के हाथों लिखी प्रति भी हो सकती है और मूलकृति की प्रथम अनुकृति भी। इस काव्य की एक अन्य प्राचीन प्रति धराद

के 'जैन ज्ञान ग्रंथ भंडार' में प्राप्त है जो विक्रम संवत् 1648 मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी रविवार को लिपिकृत है। विक्रम संवत् 1665 में लिपिबद्ध एक अन्य प्रति दक्किन कालेज, बंबई के पांडुलिपि संग्रह में भी उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त भी कान्हड़-दे प्रबंध की अनेक प्रतियाँ विद्यमान हैं। इनमें से अद्यावधिज्ञात प्रतियों में पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजय के व्यक्तिगत संग्रह में दो प्रतियाँ, प्राचीन पांडुलिपियों एवं चित्रों के प्रसिद्ध संग्राहक मोतीचंद्र खजाञ्ची के संग्रह में एक प्रति एवं एक-एक प्रति केशरबाई ज्ञान भंडार, बंबई तथा गौड़ीजी उपाश्रय, बंबई में भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कुछ खंडित कृतियाँ अन्यत्र भी प्राप्त हुई हैं, जिन्हें अधिक प्राचीन नहीं बताया जाता।

साहित्य एवं कला की विपरीत स्थितियों के उस युग में भी कान्हड़-दे प्रबंध की इतनी अधिक प्रतियों की उपस्थिति ही यह प्रमाणित करने का पर्याप्त आधार प्रस्तुत करती हैं कि पद्मनाभ अपने समय का अत्यधिक लोकप्रिय कवि था और कान्हड़-दे प्रबंध अपने समय का लोकप्रिय ऐतिहासिक-सांस्कृतिक काव्य। पद्मनाभ की लोकप्रियता का एक संपुष्ट प्रमाण यह भी है कि उस युग के अन्य कवि पद्मनाभ की रचना पद्धति से बहुत प्रभावित हुए और उसके द्वारा रचित शब्दावली का प्रयोग पद्मनाभोत्तर कवियों ने प्रचलित रूढ़ि के रूप में स्वीकार किया।

राजस्थानी साहित्य एवं इतिहास की यह महनीय कृति न जाने कब तक अज्ञात ही बनी रहती यदि यह प्राच्यविद्या के सुविख्यात अन्वेषक डा· ब्लूलर का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ न होती। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा के अज्ञात ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों का अन्वेषण करते समय थराह के जैन ज्ञान भंडार में डा· ब्लूलर को इस अनुपम काव्यकृति की पांडुलिपि प्राप्त हुई। सुरक्षित पेटिका में अवस्थित इस पांडुलिपि पर ताला जड़ा था। डा· ब्लूलर ने इस कृति की मूल्यवत्ता को पहचाना एवं इसे 'शाला पत्र' के संपादक श्री नवलराम लक्ष्मीराम पंडिया को प्रेषित कर दिया। सन् 1977-78 ईस्वी के अंकों में श्री पंडिया ने इसे अविकल रूप से प्रकाशित किया। तदत्तर डा· एच· एच· ध्रु, डा· के· एच· ध्रु एवं श्री डायाभाई पीताम्बरदास देरासरी प्रभृति अनेक अग्रणी विद्वान, पुरात्त्वविद् एवं इतिहासज्ञ इस ग्रंथ के मंथन में लगे और यह प्रबन्ध काव्य आधुनिक विद्वानों के दृष्टिपथ का केन्द्र बना।

डा· दशरथ शर्मा के शब्दों में 'कान्हड़-दे प्रबंध' एवं 'हम्मीरायण' में भी काफी समानता है। कथा का विन्यास प्रायः वही है। जालौर और रणथंभोर का वर्णन, सेना का प्रयाण, महमद-अमहद, काफर और माफर जैसे शब्दों की सूची राजपूत जातियों के नामोल्लेख और गढ़ के शृंगारादि का वर्णन एवं अन्य अनेक एक-से वर्णन हम्मीरायण के पाठक,ों को कान्हड़-दे प्रबंध की याद दिलाते हैं। विभिन्न तुलनात्मक शब्दावली प्रस्तुत करते हुए डा· दशरथ शर्मा आगे कहते हैं कि "कभी-कभी यह विचार उत्पन्न होता है

कि भांडउ ने हम्मीरायण महाकाव्य की रचना से पूर्व शायद कान्हड़-दे प्रबंध सुना हो।''

कहने की आवश्यकता नहीं कि पद्मनाभ जैसे युग-चारण कवि कभी-कभी ही पैदा होते हैं और अपने समय के काव्य ही नहीं, इतिहास को भी धार देते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. दशरथ शर्मा ने कान्हड़-दे प्रबन्ध एवं पद्मनाभ के सम-सामयिक रचनाकारों के प्रबन्ध-काव्यों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है। उन्होंने 'भाण्डउ व्यास' पर पद्मनाभ के प्रभाव को रेखांकित किया है। भांउड ही नहीं, अन्य परवर्ती कवि भी निश्चित रूप से पद्मनाभ से प्रभावित हुए होंगे।

अध्याय दो

काव्य-परम्परा एवं काव्य-रूप

कान्हड़-दे प्रबंध के काव्य-रूप की परम्परा का विवेचन करते समय हमें तत्कालीन काव्यरूपों की परम्परा पर दृष्टि रखनी चाहिये। उन दिनों के काव्यरूपों में अपभ्रंश एवं देशी भाषाओं में ही नहीं, संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा में भी राज-स्तुति-परक रचनाओं का बाहुल्य दृष्टिगत होता है। शिलालेखों और ताम्रपत्रों पर ऐसी प्रशस्तियाँ प्राचीन काल से ही प्राप्त होती रही हैं, महाकाव्य के रूप में भी हर्षचरित से प्रारंभ होकर संस्कृत भाषा में चरितलेखन की यह प्रथा अनवरत प्रवाहमान रही है। जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ''हिंदी साहित्य का आदिकाल'' नामक विनिबंध में उद्घाटित किया है, भारतीय कवियों ने ऐतिहासिकता का तो नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही, जिसमें काव्यनिर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-संग्रह की ओर कम। कल्पना-विलास का अधिक मान था, तथ्य-निरुपण का कम। संभावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, वस्तुतः घटित घटनाओं की ओर कम। 'चरित', 'विलास', 'विजय' आदि नामों से चरित काव्य लिखे जाते रहे। पद्मगुप्त का 'नवसाहसांकचरित', विल्हण का 'विक्रमांकदेवचरित', कल्हण की 'राजतरंगिणी', सन्ध्याकरनंदी का 'रामचरित', एवं जयानक का 'पृथ्वीराजविजय' ऐसे ही काव्य हैं। यह मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि संस्कृत भाषा में रचित ऐतिहासिक काव्यों में चरित-नायकों का नाम तथा नाम मात्र की कुछ घटनाएं ही ऐतिहासिक हैं बाकी उनका इतिहास से कोई गंभीर संबंध है ही नहीं। कल्पनामिश्रित इन काव्यों में नायक को धीरोदात्त बनाकर शत्रु से युद्ध और विजय, नायक के एकाधिक विवाहवृतान्त, शैल-वन-विहार, दोलाविलास, नृत्यगान, जलक्रीड़ा, वनविहारादि रसरंग-विवेचन नायिकाभेद एवं शृंगार-वियोगादि स्थितियों का चित्रण ही इन काव्यों का मुख्य वर्ण्य विषय रहा है। संस्कृत के इन महाकाव्यकार कवियों के लिये महाकाव्य के प्रतिमानों को यथा-पूर्व बनाये रखना अधिक महत्त्वपूर्ण था, ऐतिहासिक आधार तो बहाना भर होता था। अतः हमारे लिए यह उचित ही होगा कि प्रारंभ में हम पारम्परिक महाकाव्यों की विशिष्टता के निष्कर्ष पर कान्हड़-दे प्रबंध की परीक्षा करें।

प्रबंध

भारतीय साहित्य में महाकाव्य के सुनिश्चित प्रतिमान हैं। अनेक भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य की संज्ञा के विभूषण हेतु समय-समय पर विभिन्न प्रतिमान सुनिश्चित किये हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं—

1. महाकाव्य सर्गबद्ध होता है।

2. महाकाव्य का नायक कोई देवता, अथवा धीरोदात्त गुंणों से युक्त उच्च-कुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिये।

3. महाकाव्य में शृंगार, वीर और शांत इन तीनों रसों में से कोई एक रस प्रधान होना चाहिये एवं अन्य सभी रस अंगीभूत रूप में उपस्थित होने चाहिये।

4. महाकाव्य में नाटक की समस्त संधियों का निर्वहन होना चाहिये।

5. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा सज्जन पुरुष के चरित्र से सम्बद्ध होना चाहिये।

6. महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष में से किसी एक पुरुषार्थ की सिद्धि का लक्ष्य मुख्य उद्देश्य के रूप में होना चाहिये।

7. महाकाव्य के आरंभ में नमस्कार, आशीर्वचन अथवा मुख्य कथा का सूचक मंगलाचरण होना चाहिये।

8. महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक ही होनी चाहिये। सर्गों का आकार अत्यन्त छोटा अथवा बहुत बड़ा नहीं होना चाहिये। प्रायः प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग होना चाहिये। सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन वांछनीय है। कहीं कहीं किसी सर्ग में विविध छंदों का प्रयोग भी किया जा सकता है। प्रत्येक सर्ग के अंतिम छन्द में भावी कथा की सूचना भी होनी चाहिये।

9. महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, युद्धयात्रा, विवाह, मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि प्रसंगों का यथा-स्थान सांगोपांग वर्णन होना चाहिये।

10. महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु, कथा-नायक अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति के नाम के आधार पर होना चाहिये। सर्गों के नाम भी सर्ग-गत कथा के आधार पर ही होने चाहिये।

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर यदि हम कान्हड़-दे प्रबंध के महाकाव्यत्त्व की समीक्षा करें तो हमें कान्हड़-दे प्रबंध में महाकाव्य के निम्नांकित तत्त्व दृष्टिगत होते हैं —

1. कान्हड़-दे प्रबंध सर्गबद्ध काव्य है।

2. इस प्रबंध का काव्यनायक कान्हड़-दे धीरोदात्त गुणों से युक्त कुलीन क्षत्रीय है। कवि ने काव्य के अंत में नायक को विष्णु का अवतार घोषित किया है —

"चहुंआण कुल दसमी बार, आदि पुरुष लीधउ अवतार ।।"

नायक को विष्णु का अवतार मानकर अवतार से संबंधित काव्य होने के कारण प्रबंध के अंत में कवि ने इस प्रबंध काव्य की फलश्रुति उसी प्रकार से वर्णित की है, जिस प्रकार किसी धार्मिक काव्य अथवा कथा के अंत में फलश्रुति होती है—

" कान्हडचरित जिको नर भणई, एकचिति जिको नर सुणई ।
तीरथफल बोल्युं जेतलूं, पामई पुण्य सवे तेतुलूं ।।"

3. कान्हड़-दे प्रबंध में वीररस का प्रधानतः परिपाक हुआ है। करुणरस एवं शांतरस अंगीभूत रूप से इस काव्य में विद्यमान हैं।

4. महाकाव्य में नाटक की समस्त संधियों का निर्वहन हुआ है।

5. इस प्रबंध काव्य का कथानक ऐतिहासिक है एवं वह कान्हड़-दे जैसे सच्चरित्र पुरुषश्रेष्ठ के चरित्र से संबंधित है।

6. मोक्ष की प्राप्ति इस काव्य का उद्देश्य माना गया है।

7. कवि ने काव्य के प्रारंभ में गणपति एवं सरस्वती की वंदना से मंगलाचरण किया है। भारतीय परम्परा के अनुसार पद्मनाभ ने गौरीनन्दन गणेश, ब्रह्मसुता सरस्वती, आदिपुरुष एवं यमुनाजल का मंथन कर नागदमन करने वाले वासुदेवकृष्ण का वंदन किया है—

"गोरिनंदन वीनवूं, ब्रह्मसुता सरसत्ती ।
सरसबंध प्रातकवूं, द्यउ मुझ निर्मलमत्ती ।।"

तत्पश्चात् कवि ने प्रबंध काव्यों की परम्परा के अनुसार मुख्य कथा का सूचक छंद लिखा है

"जालहुरउ जगि जाणीई, सामतसीसुत जेउ
तास तणा प्रण वर्णवूं कीरत कान्हड़-देवु ।। "

8. कवि ने जहाँ देश की सांस्कृतिक परम्पराओं की लोकप्रथानुसार प्रशंसा की है —

जिहाँ पुजिज्यई सालिग्राम, जिहाँ जपिज्यइ हरिनउँ नाम ।।

वहीं काव्य में यथोचित अवसर पर नगर, राजमहल, उत्सव, युद्ध आदि के सांगोपांग वर्णन भी किये गये हैं।

नायक कान्हड़-दे के नाम पर महाकाव्य का नामकरण भी 'कान्हड़-दे प्रबंध' किया गया है। इस प्रकार आचार्यों द्वारा विनिश्चित कसौटी के आधार पर निस्संकोच भाव

से कान्हड़-दे प्रबंध को महाकाव्य माना जा सकता है ।

लक्षण ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमानों के अनुसार कुछ तत्त्व ऐसे भी है जिनके अभाव-मानक वश कान्हड़-दे प्रबंध को महाकाव्य की संज्ञा से विभूषित नहीं किया जा सकता । प्रमुखतः ये तत्त्व निम्नानुसार हैं :—

1. कान्हड़-दे प्रबंध में सर्गों की संख्या बहुत कम अर्थात् मात्र चार ही है । निर्धारित मानदण्डों के अनुसार महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से कम नहीं होनी चाहिये ।

2. कान्हड़-दे प्रबंध में प्रमुख रूप से चौपाई छंद का ही प्रयोग हुआ है जबकि महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में अलग-अलग भाँति की छंद रचना की अपेक्षा की जाती है ।

3. कान्हड़-दे प्रबंध वर्णनों के विस्तार की दृष्टि से महाकाव्य के मानदण्डों पर खरा नहीं उतरता । कवि कथा में इतना खो गया है कि उसे संध्या, सूर्य, चंद्र, अंधकार, प्रकाश, प्रभात, दिन, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नर्क, यज्ञ, विवाह, मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि प्रसंगों के विशद एवं सांगोपांग वर्णन करने का अवकाश ही नहीं मिलता ।

यद्यपि कान्हड़-दे प्रबंध की कथा महाकाव्य के गुणों के सर्वथा उपयुक्त है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि कवि इतिहास की कथा कहने को इतना उत्सुक है कि उसने हिंदुत्त्व की रक्षा के लिए मर मिटने वाले कथानायक के कीर्ति-गान को ही पर्याप्त समझ लिया है और किसी महान कथाकार की भाँति कथातत्वों का संयोजन करते हुए शेष समस्त ललित प्रसंगों को अनछुए ही छोड़ दिया है । इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में वर्णित लक्षण-ग्रंथों के अनुसार कान्हड़-दे प्रबंध को महाकाव्य कहने में संकोच होता है । किंतु, एक दृष्टि यह भी है कि सर्गों की कमी अथवा समस्त सर्गों में एक ही छंद के प्रयोग के आधार पर यदि हम किसी काव्य को महाकाव्य नहीं मानें तो रामचरितमानस जैसे काव्य को भी महाकाव्यों के अंतर्गत नहीं रख सकेंगे । मेरी दृष्टि से मात्र सर्गो की संख्या एवं छंद-संख्या की न्यूनता के कारण रामचरितमानस को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता । न्यूनाधिक यही बात पद्मनाभ रचित कान्हड़-दे प्रबंध के साथ भी है । यह प्रबंध काव्य समसामयिक परिस्थितियों के भव्य चित्रों की व्यापकता, रमणीयता, कथा की विशदता, चरित्र की महत्ता, संवादों के सौष्ठव एवं संदेश की महानता के कारण निस्संदेह एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य का गौरव प्राप्त करने के योग्य है ।

समवर्ती काव्यों का अध्ययन

यदि हम कान्हड़-दे प्रबंध एवं उसके परवर्ती लोकभाषा के काव्यों का अध्ययन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि लोकभाषा के काव्यों में संस्कृत लक्षणग्रंथों के अनुरूप महाकाव्यों के उन तत्त्वों को महत्ता नहीं दी गयी है जो छंदों की विविधता, सर्गों की संख्या की अधिकता, एवं प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णनों की विपुलता बखानते हैं । इसके

विपरीत तत्कालीन काव्यों में कथा तत्त्व की प्रधानता और महान चरित्र के विशद् वर्णन को ही प्रबंध-काव्य का मूल गुण माना गया है। इस दृष्टि से लोकभाषा तथा अपभ्रंश के विविध प्रबंध-काव्य दृष्टव्य हैं। प्रमुख रूप से वल्लाल का सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भोज प्रबंध', जिनमंडल कृत 'कुमारपाल प्रबंध', मेरुतुंग विरचित 'प्रबंध चिन्तामणि', 'राजशेखर सूरि' रचित 'चतुर्विंशतिप्रबंध' एवं प्रबंध कोष आदि प्रबंध-ग्रन्थ तुलनीय हैं। इन प्रबंधों में मात्र 'कुमारयालप्रबंध' काव्य ही कान्हड़-दे प्रबंध की तरह कथात्मक है। शेष सभी ग्रंथ यद्यपि गद्यात्मक हैं तथापि गद्य को सरसता प्रदान करने हेतु बीच-बीच में यथा अवसर सुललित पद्य भी रचे हैं।

प्रबंध ग्रंथों में प्रायः समस्त ग्रंथ ऐतिहासिक कथानकों से गुंफित हैं। 'प्रबंध चिंतामणि' तथा 'चतुर्विंशतिप्रबंध' में भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबधित संक्षिप्त कथाएँ मात्र हैं। इन ग्रन्थों में तत्त्वतः प्रबंध काव्य जैसा कोई तत्त्व नहीं है अतः इन ग्रंथों को ऐतिहासिक कथा-काव्यों की संज्ञा ही दी जा सकती है। मात्र लावण्यसमय सूरि रचित 'विमलप्रबंध' (सं०1568) ही, जो कान्हड़-दे प्रबंध (सं० 1512) से पश्चवर्ती रचना है, कान्हड़-दे प्रबंध की भाँति ही विस्तृत, सुबद्ध ऐतिहासिक, रोचक एवं पद्यमय है।

पद्मनाभ पर संस्कृत के प्रबंध-काव्यों की बजाय समसामयिक लौकिक काव्यों का अधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। पद्मनाभ के पूर्ववर्ती साहित्य में 'रासक' अथवा 'रासो' संज्ञक काव्य विधा सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रिय रही हैं। कान्हड़-दे प्रबंध काव्य नामकरण से प्रबंध-संज्ञक होने पर भी रचनाविधान में वह रासो काव्यों के अधिक निकट प्रतीत होता है।

उस समय में रासो संज्ञक काव्य के प्रचलन के व्यापक आधार हैं। रासो काव्यों में मुख्यतः नृत्य एवं संगीत का सम्मिश्रण रहता था। लोकजीवन में गीत एवं नृत्य अत्यधिक प्रमुखता रखते हैं अतः रासो काव्यों का जनसामान्य में अधिक प्रचलन था। भूखे-नंगे जनसाधारण में आनंदप्राप्ति की रीति नृत्य गीत ही है। आज भी जन साधारण के प्रत्येक आयोजन नृत्य-गीत-मय ही होते हैं। नृत्य-गीत-मय जीवन की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। बाणभट्ट ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ हर्षचरित में हर्ष के जन्मोत्सव के अवसर पर आवर्त संज्ञक रासक मण्डलों का उल्लेख किया है। श्री डी·आर· मनकड ने रासो की उत्पत्ति रस धातु से मानकर शारीरिक मुद्राओं पर आधारित लोकनृत्य में जोर से चिल्लाने के समान संगीत की लयात्मकता और कलात्मकता से युक्त काव्य शैली को रासो की संज्ञा से अभिहित किया है।

विष्णु पुराण में एक दूसरे के हाथों को परस्पर पकड़ कर नाचने को रासमण्डल माना गया है—

'हस्तेन गृह्य चैकेकां गोपीनां रासमंडलं।'

अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यानुशासन' में हेमचंद्र ने रासो को उपरूपक माना है एवं श्रव्य एवं दृश्य दोनों से समन्वित काव्य को रासो काव्य कहा है—

"लयान्तर प्रयोगेण रागेष्वपि विचित्रतं।
नाना रसं सुनिवहिष्यं कथं काव्यं इतिस्मृतम्।।"

बाघ की गुफाओं में नृत्यगीत प्रधान एक ऐसा चित्र मिला है जिसके एक ओर वादक स्त्रियों का एक दल प्रदर्शित है एवं दूसरी और सात स्त्रियाँ एक नर्तक को घेरे खड़ी हैं। तीन स्त्रियाँ दोनों हाथों में डण्डे लिये उन्हें परस्पर मिलाकर नृत्य कर रही हैं। बाघ की गुफाओं के ये चित्र दसवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य के बताये जाते हैं। हरिवंश पुराण के अनुसार एक पुरुष का बहुत सी स्त्रियों के साथ नृत्य-बंध रास-क्रीड़ा कहलाता है।

"चक्रवाले मण्डले हल्लीसका क्रीडनम् एकस्य पुंसौ बहुभिः।
स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रासक्रीड़ा।।"

नृत्य के अतिरिक्त रासक नाम द्विपदी छंद के प्रयोग के कारण भी अर्थात् रासक छंद में रचित ग्रंथों को रासो ग्रंथ कहा जाने लगा। 'दा संस्कृत ड्रामा' के अनुसार तालनृत्य एवं समूहनृत्य को नाट्यरासक की कोटियों में वर्णित किया गया है। 'नाट्यदर्पण' के अनुसार सोलह अथवा अठारह नायिकाओं द्वारा पिण्डीबंध विन्यास में नाचने को 'रासो नृत्य' कहा गया है।

कान्हड़-दे प्रबंध के समकालीन काव्य रूपों में रासक अथवा रासो काव्य प्रधानता से मिलते हैं। पृथ्वीराज रासो, खुमानरासो, सगतसिंह रासो, हम्मीररासो आदि वीर रस निमज्जित कलात्मक काव्य रासो कहे गये हैं यद्यपि इनमें वीसलदेवरास एवं संदेश-रासक जैसे लौकिक श्रृंगार-रस परक ग्रंथ भी सम्मिलित हैं। रासो काव्यों में प्रमुखतः निम्नांकित तत्वों का समावेश दृष्टव्य है—

1. चरित्र काव्यों में रासो अत्यधिक लोकप्रिय काव्य रूप रहा है। रासो संज्ञक काव्यों की कथा प्रायः ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र पर आधारित है।

2. रासो काव्य के चरित्र नायक या तो वीर योद्धा होते हैं अथवा महान प्रेमी। ये ऐतिहासिक पात्र प्रायः युद्धवीर, त्यागी एवं उदारचरित्र-सम्पन्न हैं। रासो संज्ञक समस्त काव्य गेय तो हैं ही, इन्हें नृत्य के साथ मंचित भी किया जा सकता है।

3. डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के अनुसार रासो 'राग-केदारी' में गाया जाता है। समूचा रास एक ही राग में गाया जाता है। गीति तत्व 'रासो' काव्यों का प्रमुख गुण है।

4. रासो काव्यों में पात्रों के पारस्परिक संवाद अत्यन्त चुटीले एवं मनमोहक होते थे। निश्चित रूप से अभिनय की गत्यात्मकता के साथ संवादों का चुटीलापन प्रभावशाली

प्रदर्शन हेतु अनिवार्यता लिये हुए था।

रासो काव्यों की परम्पराओं के अनुसार यदि हम कान्हड़-दे प्रबंध का मूल्यांकन करें तो निश्चित रूप से यह प्रबंधकाव्य रासो काव्यों के अधिक अनुरूप ठहरता है। रासो काव्यों के निम्नांकित तत्व कान्हड़-दे प्रबंध में विद्यमान हैं:—

1. कान्हड़-दे प्रबंध ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन प्रसंगों पर आधारित है। इस काव्य के मुख्य पात्र कान्हड़-दे, वीरमदे, सातलदे, अल्लाउद्दीन, नाहर मलिक आदि ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं।

2. कान्हड़-दे प्रबंध में अलाउद्दीन खिलजी की पुत्री सीतई का वीरमदेव के साथ प्रेम-प्रसंग चित्रित है।

3. कान्हड़-दे प्रबंध गेय तो है ही, इसे नृत्य-रूप में मंचित करना भी संभव है।

4. भडाउली को छोड़कर इस प्रबंध काव्य के चौदह छंदों को गाया जा सकता है। छंदों में वर्णित विभिन्न गीतों को विभिन्न रागों में गाया जा सकता है। इन रागों के संबंध में कवि ने स्वयं निर्देश दिये हैं। इस प्रबंध में राग रामागिरी, रागधन्यासी धुल, राग सिन्धुडउ, राग धवल-धन्यासी, राग नूछी देसाष, राग छाहुली, राग मालपसू सामेरी आदि विविध रागें विद्यमान हैं। स्वाभाविक रूप से रचनाकार ने एक ही राग में बहुत देर तक गाने से उत्पन्न एकरसता-जन्य ऊब से मुक्ति पाने हेतु बीच में थोड़ी देर के लिए राग को बदल देना नृत्य एवं गीतों में रोचात्मकता लाने के उद्देश्य से उपयुक्त समझा होगा।

5. कान्हड़-दे प्रबंध में संवादों का प्रयोग भी अत्यन्त वैदग्ध्य के साथ हुआ है।

समसामयिक काव्य रूपों में रासो काव्यों का प्राचुर्य एवं कान्हड़-दे प्रबंध में रासो काव्य-तत्वों की प्रधानता को देखकर कान्हड़-दे प्रबंध को भी प्रबंध काव्यों की चरित काव्य परंपरा में रासो काव्य परम्परा की श्रेष्ठ रचना घोषित करना अधिक युक्तिसंगत नहीं होगा।

अध्याय तीन

कान्हड़-दे प्रबंध : संस्कृति, दर्शन एवं समाज

पद्मनाभ मुख्यतः वीरत्त्व एवं संस्कृतिक गौरव का गायक कवि है। उसने हिंदू-संस्कृति जिसे भारतीय संस्कृति कहना अधिक उपयुक्त होगा—के संबंध में उद्‌बोधनात्मक स्वर अभिव्यक्त किया है। पद्मनाभ को हिंदू-संस्कृति पर अपार गर्व है। कान्हड़-दे प्रबंध में उसने अनेक अवसरों पर अपने समय की लोक-संस्कृति का विशद वर्णन किया है। उसके सम्पूर्ण काव्य में न केवल भावों में अपितु भाषा में भी चटकीले रंगों की छवि लिये वैभवपूर्ण सांस्कृतिक चित्रांकन है।

हिंदुत्व का अभिमान

पद्मनाभ को हिंदुत्व पर बड़ा अभिमान है। अपने प्रबन्ध-काव्य में उसने जगह-जगह पर हिंदुओं की प्रशंसा की है। हिंदू पुरन्दर के समान ऐश्वर्यभोगी, विवेकी, संयत-वचनों का वक्ता, अठारह प्रकार के व्यंजनों का भोजन करने वाला, विविध भाँति के शृंगार करने वाला, बुद्धिमान तथा अत्यन्त पूज्य होता है। चतुर्वर्ण समाज की प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ है। पद्मनाभ के युग तक चतुर्वर्ण समाज अनेकानेक जातियों में विभक्त हो चुका था। पद्मनाभ ने सभी जातियों की अत्यन्त बारीकी से परिगणना की है। चतुर्वर्ण समाज में प्रथम वर्ण ब्राह्मण का समाज में सर्वोच्च स्थान रहा है। अतएव पद्मनाभ ने तत्कालीन ब्राह्मणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कान्हड़-दे को युद्ध के लिए अनुप्रेरित करने वाला सोमचंद व्यास भी ब्राह्मण ही था। ब्राह्मणों की अनेक उपजातियों में श्रीमाली, प्रोहित (पुरोहित), एवं देरासरी प्रमुख हैं। भिन्नमाल के वर्णन में कवि ने बताया है कि उस समय भिन्नमाल में श्रीमाली ब्राह्मणों की संख्या पैंतालीस हजार थी। यह विवरण उसने श्रीमाल-पुराण से लिया प्रतीत होता है, जो पद्मपुराण का एक अंश है। पद्मनाभ के अनुसार ये ब्राह्मण पृथ्वी पर अवतरित देवतुल्य थे। छः अंगों सहित चारों वेदों तथा आठों व्याकरणों—संभवतः यहाँ आठों व्याकरणों का तात्पर्य पाणिनि की अष्टाध्यायी से है—का अध्ययन किया जाता था। पद्मनाभ के अनुसार इन ब्राह्मणों को चौदहविद्याओं, अठारहपुराणों, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र (भरहसंगीत), ज्योतिष,

काव्यशास्त्र (पिंगल), के साथ-साथ अश्वविद्या का भी ज्ञान था। ये ब्राह्मण स्मृतियों के मर्मज्ञ विद्वान् थे एवं प्रतिदिन अग्निहोत्रादि वेद-विहित नित्यकर्म किया करते थे। ब्राह्मणों के साथ उनके शिष्य वैदिक ऋचाओं को पढ़ते हुए चला करते थे। इन पवित्र ब्राह्मणों के दर्शनों से ही मनुष्यों के पापों का नाश हो जाता था। पूर्व के अट्ठासी सहस्र विभिन्न ऋषियों के तुल्य ही ये ब्राह्मण सर्वथा से पूज्य थे। इनके घर की सम्पदा कभी समाप्त नहीं होती थी। इन्हें लक्ष्मी का अमोघ वरदान प्राप्त था। ब्राह्मणों पर आक्रमण अत्यन्त निंद्य समझा जाता था एवं राजा का कर्तव्य समझा जाता था कि आक्रान्त होने पर तुरन्त उनकी रक्षा न कर सकने तक रक्षा करे। राजा कान्हड़-दे इन ब्राह्मणों पर आक्रमण होने से अत्यन्त व्याकुल था और उनकी स्वयं के जीवन को व्यर्थ समझता था। पद्मनाभ की मान्यता है कि इन ब्राह्मणों के बंधन को छुड़वाने में जिन वीरों ने वीरगति प्राप्त की, उन्होंने अपने जीवन को सफल किया।

भारतीय संस्कृति की भावभूमि

भारतीय संस्कृति वह रहस्यवादी चेतना है जो सत्य को रागमयी भावनाओं एवं संवेदनाओं से गुम्फित कर सुंदर रूप में अभिव्यक्त करती हैं। मानव एवं ब्रह्म के चेतन संबंध की रागात्मक कड़ी इस संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है। किंतु, भारतीय दर्शन पश्चिम की भाँति विश्लेषणात्मक बौद्धिकता (Analytical Reasoning) को अधिक महत्व न देकर सर्जनात्मक प्रज्ञा (Creative Intution) को अधिक महत्त्व देता है। यही कारण है कि भारतीयों के लिये रहस्य के स्थान पर दर्शन शब्द अधिक प्रेय है। पद्मनाभ के काव्य में भारतीय दर्शन के बहुविध रूप परिलक्षित होते हैं। इनमें भी वेदान्तदर्शन, जैनदर्शन, एवं सांख्य दर्शन प्रमुख हैं।

वेदान्तियों के अनुसार आत्मा सदैव प्रकाशमान है। आत्मा और ब्रह्म का सम्बन्ध चिंगारी और अग्नि के समान है। जीव को जब अपने ब्रह्मत्त्व का ज्ञान हो जाता है तो वह माया के बंधन से मुक्त होकर स्वयं ब्रह्मस्वरूप बन जाता है। अविद्या या अज्ञान के कारण जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता फलतः वह अपने कर्मफल भोगते हुए आवागमन के बंधनों में फंसकर दुख प्राप्त करता रहता है। ब्रह्म जीव के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है। जगत् ब्रह्म की क्रीड़ा है। ब्रह्म की यह क्रीड़ा अर्थात् जगत् यथार्थ न होकर प्रतिभासित है। पद्मनाभ वेदान्त दर्शन के आधार पर आत्मा की अमरता को स्वीकार करता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार ब्रह्म एक सर्वव्यापी सत्ता है जो जगत् के अणु-परमाणु में परिव्याप्त है। ब्रह्म के इस सर्वव्यापक रूप को ग्रहण करते हुए सातलदे ने तो अपने शत्रु अल्लाउद्दीन तक में अपने आराध्य देव शिव के दर्शन किये हैं। अपने शत्रु में भी अपने आराध्य देव के दर्शन वेदान्तियों के "सर्वम् खलु

इदम् ब्रह्म'' की मान्यता के अनुरूप ही है—

''रुद्र रूपि सुरताण अवतरिउ, किम घालीजे घाउ ।
हियइ वात विमासी सांतील, पाछउ दीधउ पाउ ।''

वेदान्त दर्शन के साथ ही साथ पद्मनाभ के काव्य में मीमांसा दर्शन का भी निरुपण हुआ है। इस दर्शन ने अनुसार वेद-विहित कर्म ही करणीय होते हैं। वेद-विहित कर्मों का सम्पादन ही धर्म है और वेद-विहित कर्म के सम्पादन से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष का अर्थ स्वर्ग को प्राप्त करना है। इस दर्शन के अनुसार सृष्टि अनादि और अनंत है। यद्यपि पद्मनाभ ने द्वैतवादी दर्शन को भी निरुपति किया है तथापि पद्मनाभ शैव दर्शन से विशेष प्रभावित है। पद्मनाभ ने अल्लाउद्दीन तक को शिव के रूप में चित्रित किया है। सातल-दे को स्वयं अंबिका ने सुलतान के समीप ले जाकर उसके भीतर का शिव का स्वरूप दिखलाया है। सातल देखता है कि अल्लाउद्दीन तीन नेत्र एवं पांच मुख धारण किये, सुविशालरुण्ड़माल पहने, हाथ में तूम्बा एवं ब्रह्म-कपाल लिये, जटा-मुकुट में गंगा और अंगों में भस्म रमाये व्याध्र-चर्म को धारण किये हुए है एवं उसके समीप त्रिशूल रखा है। अल्लाउद्दीन में इस शिव-स्वरूप को देखकर वह अत्यन्त विस्मित हुआ और उसने रुद्र रूप में सोये हुए सुल्तान पर प्रहार नहीं किया।

''दीठां नयण त्रिणि मुष पांचइ, कपिल जटा सुविसाल
रुंडमाल दीठी करि तुंबा, दीठउं ब्रह्मकपाल ।।''

शिव स्वयं प्रलयंकारी है एवं अल्लाउद्दीन भी प्रलय ढ़ा रहा है। वह भी महाकाल की ही भाँति सर्वग्रासी है। जहाँ-जहाँ महा-प्रलय है वहाँ वहाँ उसका कर्ता शिव ही है। पद्मनाभ की यह मान्यता वस्तुतः शिव में उसकी अद्वितीय भक्ति की द्योतक है।

शैव-दर्शन के साथ ही साथ पद्मनाभ शाक्त सम्प्रदाय को भी मानते हैं। शक्ति में कवि की ही नहीं, कवि के चरितनायकों की भी अपूर्व भक्ति है। कठिन परिस्थितियों में चरित-नायक अपने संकटों को दूर करने हेतु कुल-देवी आशापुरी का स्मरण करते हैं। स्वप्न में आशापुरी मनोवांछित फल की सिद्धि का वचन देती है। समय-समय पर भगवती आशापुरी ने ही उनका मार्गदर्शन किया है—

'' आसापुरी आसिका आपी, त्रंबकि वाजी सान ।
ढोल ध्रसूंकइ डूंगर कंपइ, चडीउ राउल कान्ह ।।''

पद्मनाभ गीता में प्रतिपादित कर्म-सिद्धान्त में पूर्ण आस्था रखता है। कर्मवाद के अनुसार मनुष्य द्वारा किये गये अच्छे एवं बुरे कर्मों का फल सदैव सुरक्षित रहता है। अर्थात् किए हुए कर्म का फल नष्ट नहीं होता । —''कृत कर्म क्षयो नास्ति'' । मनुष्य

को शुभाशुभ कर्मो का फल भोगना ही पड़ता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं : संचित, प्रारब्ध और संचीयमाण या क्रियमाण। संचित कर्म उस शक्ति को कहते हैं जो अतीत कर्मों से उत्पन्न होती है किंतु जिसके फलों का प्रारंभ इस जीवन में हो चुका है। वर्तमान शरीर तथा धन संपत्ति आदि प्रारब्ध कर्म के फल हैं। क्रियमाण कर्म उसे कहते हैं जिसका संचय वर्तमान जीवन में होता है। यह इस जीवन में व्युत्पन्न नया कर्म है। अच्छे कर्म करने से पुण्य होता है और कालान्तर में उससे सुख की उपलब्धि होती है एवं अनुचित कर्मों का फल सदैव अशुभ ही होता है।

कर्मवाद के अनुसार इस जन्म के पूर्व तथा पश्चात् भी जीव का अस्तित्त्व विद्यमान रहता है और जीवनकाल में पूर्व जन्मों में किए गए कर्मों के फलों को भोगने के लिए ही इस संसार में बारंबार जीव का आगमन एवं निर्गमन होता है। इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी प्राणी द्वारा किसी एक जन्म में जो कर्म किया जाता है, उसका फल उसे उसी अथवा किसी अगले जन्म में अवश्य मिलता है और ये फल जीव को जन्म-जन्मांतर तक तब तक मिलते रहते हैं जब तक कि वह अमरत्त्व, मोक्ष अथवा सायुज्य को प्राप्त न कर ले। पुनर्जन्म कर्मवाद का मुख्य आधार है।

भारतीय दर्शन के इस कर्मवाद एवं पुर्नजन्म के सिद्धान्त से जो कि भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है, महाकाव्यकार पद्मनाभ भी भला कैसे अछूता रहता? अतएव पद्मनाभ का पुनर्जन्म में अटूट विश्वास है। उसने बार-बार पुनर्जन्म की चर्चा की है। यहाँ तक कि अल्लाउद्दीन की पुत्री ने भी अपने पूर्व-जन्म की कथा बताई है। उसने अपने ही नहीं, अल्लाउद्दीन के भी अनेक जन्मों का उल्लेख किया है। पद्मनाभ प्रीति-सम्बन्धों को जन्म–जन्मान्तर तक चलते रहने की मान्यता देता है—

पद्मनाभ पंडित भणई, जनमंतरि जे रीति।
जाति हूई जूजूई, पूठि न छांडई प्रीति॥

बंदी खाने में पड़े कैदी भी यह कहते हुए बिलखते दीखते हैं—

"केहां जनम तणां इणि वेला
आवी लागां पाप ?"

वस्तुतः कर्मानुसार फल के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा से समाज में सदाचार के व्यवहार को प्रतिष्ठित करने में बड़ी सहायता मिली है। सत्कर्म को पुण्य एवं असत् कर्म को पाप संज्ञा से अभिहित किया गया है, जिससे कि मनुष्य को निरंतर सत्कर्म करने की प्रेरणा मिलती रहे।

पुण्य कार्य

भागवत धर्म के अनुसार पद्मनाभ भी यज्ञ, तप, त्याग, सत्य, दान, गंगा-नर्मदा-गोदावरी-गोमती आदि नदियों में स्नान; गंगाद्वार, केदार, द्वारिका, प्रयाग आदि तीर्थों के एवं सन्तों की सप्त मुक्ति-पुरियों आदि पवित्र स्थानों के दर्शन; साहस, सतीत्व, विद्याओं का उद्धार, नारायण के दर्शन एवं राम-नाम के उच्चारण आदि गुणों एवं-कर्मों को पुण्यकृत्य मानते हैं। इसके साथ ही वे गौ-पूजन, ब्राह्मण-पूजन, गौ-ब्राह्मण एवं धर्म की रक्षा के लिये युद्ध एवं स्वामी के प्रति वफादारी को पुण्य कृत्य मानते हैं।

पुण्य के फल

पद्मनाभ के अनुसार पुण्याचरण के प्रभाव से शत्रुओं का संहार, धन-सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, सुभग-स्वरूप, मनोवांछित कुलीन सुंदरी स्त्री की प्राप्ति, सन्तान, आरोग्य बहुमूल्य वस्त्र, हीरक-माणिक्य-मुक्ता आदि रत्न जटित आभूषण, एवं विजय आदि सुफल पुण्यवन्त जनों को प्राप्त होते हैं। पुण्य के प्रभाव से ही विद्या, समोज्ज्वल कीर्ति, एक सौ आठ मंगलाचारों के अवसरों की उपलब्धि, विजय, सज्जनों से संयोग, दुष्कृत्यों से रक्षा, जन-सामान्य को राज-सम्मान एवं राजा को सरल सामन्तों की प्राप्ति, अक्रोध, सत्य, सुमति तथा पुण्य-प्रवृत्तियों की प्राप्ति होती हैं एवं पुण्यात्माओं के लिए पुण्य के प्रभाव से सर्वथा असंभव कार्य भी सहज संभव हो जाते हैं।

पाप के फल

पुण्याचरण के विपरीत आचरण पापाचरण के फल हैं। पद्मनाभ के अनुसार कुपथ पर चलना, झूठी साक्षी देना, जननी के स्तनों से खेलते बालक को जननी के स्तनों से विलग करवाना, गायों के गोचर में कृषि करना, घाटों को नष्ट करना, वन से मधु एकत्रित करना, माता-पिता एवं वेदों की अवज्ञा, कुलाचार का विलोपन, विप्रों को दान न देना, एकादशी का व्रत नहीं करना, घर आये अतिथि का सत्कार न करना, प्यासों को पानी न पिलाना, पर-नारी-गमन, पंच पातक अर्थात् चोरी, व्यभिचार, बेइमानी, नशाखोरी एवं बच्चों को वंचित रखकर छुपकर भोजन करना, सरोवर की दीवारें तोड़ना, पीपल जैसे वृक्ष को काटना, देव-प्रासादों को गिराना, कन्या-विक्रय करना, लाख, नमक एवं तेल को बिखेरना, सूर्य-चंद्र ग्रहण के समय दान ग्रहण करना, विश्वासघात करना, सुपात्र की अवगणना करना, बलपूर्वक दूसरों का धन छीन कर देह-शोषण करना, संग्राम प्रारंभ होने पर अपने प्राणों की रक्षा के लिये स्वामी से अलग होकर भाग जाना, स्वामी-द्रोह, आसव-पान, ब्रह्म-हत्या, अन्य लोगों को बन्धन में डालना, नीच-संग, स्वर्ण की चोरी करना,

तुलसी पत्र से कृष्ण का पूजन न करना, जीव-दया का पालन न करना, वचन का पालन न करना, काह्लर (एकत्रित घास) जलाना, सौंपे हुए कार्य अथवा धन में हस्तक्षेप, छिपकर विष देना, किसी की आशाओं पर तुषारापात करना, बलपूर्वक धन-हरण, सप्त-व्यसनों का आचरण, परनिंदा, रिश्वत एवं दीनों पर दयापूर्वक आचरण नहीं करना परम पाप-कर्म माने जाते थे।

पाप के परिणामस्वरूप दर-दर में गोह एवं सांप जैसे हिंसक सरीसृप निकलते हैं।

पूर्वजन्म के दुष्कर्मों के फलस्वरूप अनेकानेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं। इन दुखों में बन्दी बनना, दागा जाना, धूप में जलते एवं ठंड में ठिठुरते रहना, बच्चों को बिलखते देखना, विवस्त्र एवं नंगे पाँव रहना, अशक्त, रोगी, तृषित एवं क्षुधित होना, पति-पत्नी अथवा सन्तान का वियोग आदि घोर दुःख पापों के परिणामस्वरूप भोगने पड़ते हैं, ऐसा माना जाता था।

भागवत धर्म

कान्हड़-दे प्रबन्ध में भागवत धर्म की अत्यन्त मोहक झांकी मिलती है। भागवत धर्म में पंच महायज्ञों की प्रतिष्ठा है। ऋषि-यज्ञ (अध्ययन एवं अध्यापन), पितृ-यज्ञ (स्नान एवं तर्पण), देवयज्ञ (पूजन एवं हवन), भूत-यज्ञ (बलि-वैश्वदेव कर्म) एवं नृयज्ञ (अतिथि सत्कार) पंच महायज्ञ कहलाते हैं। राजमहल में पुरोहितों द्वारा मंगल-पाठ करवाया जाता था। वृक्षों को देवस्वरूप माना जाता था। तुलसी, अश्वस्थ एवं पिप्पल जैसे पवित्र वृक्षों के पूजन का विधान था।

गौ-पूजन भी भागवत धर्म का प्रमुख अंग है। कान्हड़-दे प्रबंध के अनुसार उस काल में गौ को परम श्रद्धास्पद माना जाता था। गौ-देह में तैंतीस कोटि देवताओं का निवास माना जाता था। राजा द्वारा गायों के चरने के लिये भूमि छोड़ी जाती थी, जिसे गोचर कहते थे। गोचर की भूमि उर्वरा हुआ करती थी तथापि उसमें कृषि कर्म निषिद्ध माना जाता था। गौ-वध एवं गौ-मांस-भक्षण को घोर दुष्कर्म माने जाते थे। इसी प्रकार अतिथि को भी देव-तुल्य माना जाता था। गौ-पूजन की ही भाँति दानशीलता का भी बड़ा महत्त्व था। न केवल राजा अपितु साधारण गृहस्थ भी भिक्षुओं को नियम-पूर्वक नित्य दान देते थे।

भागवत धर्म अवतारवाद में विश्वास रखता है। परमात्मा का मनुष्य के रूप में अवतार का उद्देश्य सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का विनाश एवं धर्म की स्थापना बताया गया है। गीता में कृष्ण के द्वारा प्रतिपादित मत भी यही है—

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

पद्मनाभ अपने काव्य के चरितनायक कान्हड़-दे को भी उक्त कृत्यों अर्थात् साधारण जनों की रक्षा, दुर्जन अल्लाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध एवं धर्म की रक्षा के लिए सन्नद्धता के कारण भगवान का अवतार मानता है—

नवि अवतार देव अवतर्‍या ।
जीणइ असुरे सवे संहर्‍या ।।
चाहूआण कुलि दसमी वार ।
आदि पुरुष लीधउ अवतार ।।

मूंणोत नैणसी के अनुसार भी 'कान्हड़-दे' तत्कालीन समय में विष्णु का अवतार माना जाता था ।

भागवत धर्म की दार्शनिक मान्यताओं के प्रचलन के अतिरिक्त लोकधर्म भी प्रचलित था । यह लोक-धर्म भारत की सहस्राब्दियों पूर्व की थाती का प्रतीक स्वरूप ही था । मंत्र, तंत्र, जादू और टोनें-टोटकों जैसी कुछ परम्पराएं भी विद्यमान थीं । राज्य में वर्षा करवाने के लिये मन्त्रोपचार का प्रयोग किया जाता था । कान्हड़-दे प्रबन्ध में सोमचंद्र व्यास द्वारा मन्त्रोपचार से वर्षा करवाने का साक्ष्य उपलब्ध है—

व्यास भणइ मंत्रनइ उपाय
विहिली वृष्टि हुसइ गढ माहि ।
गढ़ ऊपरि गढ़रोहा समइ
वूठा देव दिवस चउदमइ ।

पद्मनाभ ने मंत्र को देवताओं की महौषधि माना हैं—

मंत्र महोषधि देवता
अनुदिन पूरइ रिद्धि ।

मन्त्रो के अतिरिक्त अभिचारादि गुप्त क्रियाओं की भी लोक-मान्यता थी । पशुपक्षियों के क्रन्दन जैसे लक्षणों एवं अन्य विचित्र प्रकार के शकुनों पर यद्यपि सामान्यतः लोक-आस्था थी, तथापि कान्हड़-दे प्रबन्ध में स्वप्न विचार पर दृढ़ विश्वास अभिव्यक्त किया गया है । (सोरठ) गुजरात को पराजित कर लौटते समय उलुग खां पर आक्रमण करने से पूर्व कान्हड़-दे ने एक स्वप्न में गंगा और गौरी को बिलखते तथा मंगोलों एवं म्लेच्छों से अपने स्वामी को छुड़वाने की प्रार्थना करते देखा था और सोमचंद्र व्यास ने उस स्वप्न की व्याख्या करते हुए उलुग खां पर आक्रमण करने की सलाह दी थी—

ऊठिउ वीर मोडीऊं आलस, कीधउ सुपनविचार ।
सोमचंद्र व्यासइ इम कहि, म्लेछ तणउ करि मार ॥

इसी प्रकार इस काव्य में विभिन्न स्थलों पर गोविंद, ब्राह्मण रूप में गढ़ जालौर, भगवती आशापुरी, गणेश एवं कृष्ण (कान्ह-स्वामी) स्वप्न में प्रकट होकर समय-समय पर चरित नायक को दिशा निर्देश देते दृष्टिगत होते हैं।

पद्मनाभ ने ब्राह्मणों एवं पुरोहितों द्वारा मंगल-पाठ, गोत्र देवियों का पूजन, स्त्रियों द्वारा मंगलाचार, लूण-लेछणा, एवं वारने उतारने जैसी अनेकानेक लोक-मान्यताओं के सांस्कृतिक चित्र मनोमुग्धकारी हार्दिकता के साथ उभारे हैं ।

पद्मनाभ के समय तक समाज में वर्ण स्पष्टतः जातियों एवं उप-जातियों में विभाजित हो चुके थे । पद्मनाभ ने ब्राह्मणों में श्रीमाली, प्रोहित एवं देराश्री जातियों का विवरण दिया है । ब्राह्मण छः अंगों सहित चारों वेदों, अठारह पुराणों, ज्योतिष, आयुर्वेद, नाट्य-शास्त्र एवं काव्य-शास्त्र आठों व्याकरणों—संभवतः यहाँ पद्मनाभ का तात्पर्य पाणिनि की अष्टाध्यायी से है—एवं चौदह विद्याओं के साथ-साथ शालिहोत्र-शास्त्र के ज्ञाता तथा स्वप्नों के भाष्यकार हुआ करते थे । वे स्वयं सद्विवेकी, सद्विचार सम्पन्न, विनोदी एवं, सत्परामर्शदाता होने के साथ-वेद-विहितकर्मों का प्रतिदिन आचरण एवं अग्निहोत्रादि नित्यकर्म करने वाले होते थे । उनके शिष्य शास्त्रों का अभ्यास करते हुए उनके पीछे चला करते थे । समाज में ब्राह्मणों का सर्वोपरि स्थान था एवं समाज में उनके प्रति पूज्य भाव था । वे पृथ्वी पर देव-तुल्य माने जाते थे । ब्राह्मणों के दर्शनों से ही पापों का क्षय हो जाता है ऐसी लोक-मान्यता प्रचलित थी । पूर्व में अठ्ठासी हजार ऋषियों के समतुल्य पैंतालीस हजार तपस्वी श्रीमाली ब्राह्मणों का भीनमाल में निवास था । पद्मनाभ ने यह संख्या श्रीमाल पुराण से ली हुई प्रतीत होती है, जो पद्मपुराण का ही एक अंश है । इन श्रीमालियों को लक्ष्मी से ऐसा वरदान प्राप्त था, कि उनकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती थी । राजा स्वयं ब्राह्मणों की पालकी उठाया करता था । ब्राह्मणों को प्रभूत दान दिया जाता था । राजा के युद्ध में मारने पर प्रायः राज व्यास भी जीवत नहीं रहता था—

जउ तुम्ह पूठि रहुं जीवतउ
तउ अपकीरत्ति पामूं ।
गढ़ जाल्होर भेलातां निश्चइ
अंग आपणउं होमूं ।

क्षत्रियों के छत्तीस प्रसिद्ध राजवंश थे, जो छत्तीस प्रकार के दण्डायुद्ध धारण करते थे । इनमें चौहान, सोलंकी, बाघेला, राठौड़, चावड़ा, यादव, परमार, गुहिल, देवड़ा आदि

राजवंश मुख्य थे। गो-अबला एवं विप्रों की रक्षा करना इनका मुख्य कर्म था। इन्हें राजाओं से ग्रास के रूप में ग्राम प्राप्त थे, जिन्हें भोगते हुए एवं युद्धोपयोगी विविध शस्त्रों के संचालन का अभ्यास करते हुए समस्त राज-पुत्र परंपरा के अनुसार चलते थे—

षांडां पटा तणा गजवेलि।
अलवि आगिला हींडइ गेलि ।।

क्षत्रित्व, साहस एवं धैर्य आदि गुणों से सम्पन्न ये योद्धा अपने स्वामी के लिये युद्ध करते एवं रण-भूमि में मरण प्राप्त करते किंतु किन्हीं भी परिस्थितियों में हीन-कर्म से सदैव विमुख रहते।

ये राजपूत अपने साथ घोड़े एवं सजातीय व्यक्ति भी रखते थे। छियानवें गुणों और बत्तीसों लक्षणों से युक्त ये क्षत्रिय युद्ध के समय लड़ने हेतु एकत्रित होते एवं अपने राजा के अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्रणम्य नहीं समझते थे।

समाज में वैश्यों का भी बड़ा प्रभाव था। पद्मनाभ ने व्यवसायियों की श्रावक एवं माहेश्वरी, दो जातियां गिनवाई हैं। इन दोनों में भी प्रत्येक में दसा और बीसा (हीन एवं उच्च) इस प्रकार के दो भेद थे। ये व्यवसायी स्थल मार्ग एवं जल मार्ग से आनेवाली वस्तुओं का व्यापार करते थे। पद्मनाभ ने इन व्यावसायियों के व्यावसायिक नाम भी दिये है। अनाज के व्यापारी कड़िया, कपड़े के व्यापारी दोषी एवं जवाहरात के व्यापारी जौहरी कहलाते थे। दुकानों पर छत्तीसों प्रकार के किरयाने, चोल आदि वस्त्र, पाडुसूत्र (उच्च कोटि के रेशमी वस्त्र), मजीठ आदि शृंगार सामग्री मिला करती थी। सभी व्यवसायी न्यायपूर्वक क्रय-विक्रय किया करते थे एवं युद्ध के समय सेना को सामग्री उपलब्ध करवा कर राजा को यथाविधि नैतिक सहयोग देकर उसका साहस बढ़ाते थे। पद्मनाभ ने युद्धकाल में लोक-सहयोग का विशद एवं मार्मिक वर्णन किया है—

विवहारीया राय वीनवइ
अम्हे आलहिणूं करिस्युं सवइ।
करिज्यो वेढ़ि म छंडउ माण
वरस साठि पूरिस्यउं धान।

इसी प्रकार व्यावसायियों द्वारा विविध प्रकार के अन्न, वस्त्र, दलहन, तिलहन, दूध, तेल, ईंधन, छाछ, त्रापड़, गुड़, आदि सामग्री युद्धकाल में बरसों तक व्यावसायियों द्वारा पूर्ति करने का आश्वासन राजा को दिये जाने का वर्णन पद्मनाभ द्वारा अंकित किया गया है।

पद्मनाभ ने शूद्र वर्ण का उल्लेख न करते हुए विविध व्यवसाय करने वाले कारीगरों का उल्लेख किया है। इनमें रंगाई करने वाले छीपा, तेल निकालने वाले घांची, चर्म उद्योग

करने वाले मोची, बांस का काम करने वाले गांछी, सिलाई करने वाले दर्जी, काष्ठ का कार्य करने वाले सुथार, इस प्रकार विविध गृहोद्योग करने वाले अठारह वर्णों के लोगों का वर्णन किया है। यह विशेष उल्लेखनीय है कि पद्मनाभ ने चतुर्वर्ण समाज में स्थान पर अठारह वर्ण बताये हैं—

"बसह नगर मांहि वर्ण अढ़ार।"

अठारह वर्णो के अतिरिक्त पद्मनाभ ने मुद्रा एवं कांथडी पहिनने वाले यतियों, योगियों एवं तापडियों (कापालिकों) का भी यथा-स्थान वर्णन किया है।

समाज में स्त्रियों का स्थान

पद्मनाभ-कालीन समाज में स्त्रियों का स्थान सम्मान-पूर्ण था। पद्मनाभ ने यद्यपि मात्र रानियों का ही वर्णन किया है किंतु उस वर्णन से ही समाज में स्त्रियों के स्थान का पता चल जाता है। घरों में भोजन बनाने एवं जल भरने का कार्य स्त्रियां किया करती थीं! पुरुष नीतिनिर्धारण में स्त्रियों से परामर्श लेता था—

सांतल इसूं विमासी करी।
तेडी पूछी अंतेउरी।

वे पति के देशद्रोह की खबर राजा तक पहुँचा देती थीं। साहसी स्त्रियाँ कृतध्नता करने पर अपने पति को धिक्कारती थीं तथा देशद्रोह के लिये उनके प्राण तक हर लेती थीं। पद्मनाभ ने हीरादेवी नामक एक ऐसी रूपसी वीरांगना का उल्लेख किया है जो भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में अप्रतिम है। इस वीरांगना ने राजद्रोह के अपराध में अपने पति को धिक्कारते हुए उस पर ताम्र-घट का प्रहार कर उसे यमलोक पहुँचा दिया —

इसउ बोल हीरा दे भण्यउ।
सेजवाल त्रंबलू हण्यउ।

किंतु राष्ट्रभक्त पति के साथ इनका इतना प्रेम होता था कि भावी जन्म में भी ये स्त्रियाँ उसी राष्ट्रभक्त एवं वीर पति को प्राप्त करने की कामना करती थीं।

मुस्लिम-स्त्रियाँ युद्धकाल में भी अपने पति के साथ सैन्य शिविर में रहती थीं। वे शत्रु से अपने सम्बन्धियों को छुड़वाने के लिए कभी-कभी संधि-विग्राहक का कार्य भी करती थीं।

विवाह

पद्मनाभ ने कुलीन घरानों के वैवाहिक सम्बन्धों का संकेत भर दिया है। कन्यापक्ष के लोग वर पक्ष के समक्ष विवाह का प्रस्ताव भेजते थे। यह प्रस्ताव प्रायः भाट ले जाया करते थे। भाटों द्वारा कन्या पक्ष की ओर से देय दहेज की मात्रा का संकेत भी दिया जाता था। कान्हड़-दे प्रबन्ध में अल्लाउद्दीन की दुहिता का विवाह प्रस्ताव लेकर गोल्हण शाह के जालौर पहुँचने का उल्लेख है। राजकुमारों के विवाह प्रस्ताव सार्वजनिक रूप से राज-सभा में रखे जाते थे। विवाह में पुरुष एवं कन्या दोनों के सहमत होने पर ही विवाह किये जाने का भी संकेत है। राजा प्रायः एक से अधिक विवाह करते थे। पद्मनाभ ने सातल दे के दो एवं कान्हड़-दे के चार रानियाँ होने का उल्लेख किया है।

दहेज

विवाह में दहेज दिये जाने की प्रथा विद्यमान थी। अल्लाउद्दीन द्वारा सीतई का विवाह प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने पर दहेज में जालोर का घेरा हटाने, मुस्लिम सेना को दिल्ली लौटाने, वीरम देव को गुजरात का राज्य देने एवं छप्पन करोड़ रुपयों का नगद धन के रूप में दहेज देने के प्रस्ताव का उल्लेख हैं।

रणवास

रानियाँ महल के भीतरी भाग — अन्तःपुर — में रहती थीं। अन्तःपुर को रणवास कहा जाता था। राजा के अन्तःपुर में कुलीन, अपरिमित रूपमती एवं सौन्दर्य-शालिनी रानियाँ हुआ करती थीं। ये सभी रानियाँ राजा को सुखी बनाने हेतु सचेष्ट रहती थीं।

भातृ प्रेम

भाईयों में परस्पर अत्यधिक प्रेम रहा करता था। पद्मनाभ ने कान्हड़-दे एवं वीरम दे में परस्पर राम एवं लक्ष्मण, सुग्रीव एवं हनुमान के समान प्रगाढ़ प्रेम का उल्लेख करते हुए बताया है कि दोनों भाइयों के शरीर चाहे दो हों, पर प्राण एक हुआ करते थे। राजा का अनुज प्रायः युद्ध में नेतृत्व किया करता था। रक्षात्मक युद्ध के स्थान पर प्रहारात्मक युद्ध करने का निर्णय लिये जाने पर प्रायः उसी के नेतृत्व में सेना को गढ़ से बाहर भेजा जाता था।

भोजन

राजा प्रायः सेना-नायकों एवं सैनिकों के साथ ही भोजन किया करता था। पद्मनाभ ने तत्कालीन भोज्य पदार्थों का भी विस्तार से वर्णन किया है। भोजन में नर्म सुंहाली सेव, लड्डू, पंचधारी की लापसी, कसार, खाजा जैसी मिठाईयां, तले हुए पापड़ एवं पापड़ी जैसे नमकीन एवं बड़ी (मंगोडी) का सालन, आदि अठारह प्रकार की रसोई का वर्णन है। भोजन में उजला एवं गाढ़ा जमा हुआ दही भी परोसा जाता था।

भोजन के पश्चात् मुखवास के लिये कर्पूर डालकर ताम्बूल दिया जाता था।

समृद्धि

पद्मनाभ ने अपने समय के सामाजिक जीवन की समृद्धि का मोहक एवं लालित्यपूर्ण चित्रण किया है। जालोर एवं उसके समीपस्थ प्रदेश—गुजरात एवं काठियावाड़—विपुल सम्पत्तिशाली थे। उसने सोने-चांदी, हीरे-जवाहरात, धन-धान्य आदि सम्पत्तियों का उमंग-पूर्वक वर्णन किया है —

माणिक मोती सोनां सार
गढ़ मांहि गरथ भरिया भडांर।

राजा इतना समृद्धिशाली था कि उसके लाखों घोड़े गन्ना, मिश्री, एवं द्राक्षा चरते थे।

चरइ सेलडी साकर द्राष।
अति रूअडा तुरंगम लाष।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह चित्रण अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है।

वस्त्राभूषण

पद्मनाभ ने स्त्रियों के वस्त्राभूषणों का संक्षिप्त किंतु ललित वर्णन किया है। सुहागिन औरतें नौ-रंगों के 'ओढ़णे' ओढ़ती थीं एवं सुंदर वस्त्र पहिनती थीं। गले में बहिरखा एवं निगोदर हार, हाथ में मोतियों से जड़ी सोने की त्राट तथा पांवों में रणन् की झंकार करते हुए जेवर पहने जाते थे। स्त्रियों के भाल पर कुंकुम का सु-शोभन तिलक अलंकृत होता था।

मनोरंजन के साधन

पद्मनाभ ने लोक-रंजन के विविध साधनों का वर्णन भी विस्तार से किया है। लोक-

रंजन के लिये वेणु, मृदंग आदि वाद्य यंत्र बजाये जाते थे। इन यन्त्रों की लय पर सुंदर नृत्यांगनाओं द्वारा उत्साहपूर्वक नृत्य-गान के कार्यक्रम हुआ करते थे। सामूहिक नृत्य-शास्त्र एवं भरत मुनि के नाट्य शास्त्र के अनुरूप रंगमंच के नाटक, पंच शब्द के वाद्य यंत्र एवं सप्त-स्वरों में सलोने गीत-संगीत हुआ करते थे। तत, वितत, घन, सुषिर एवं मृदंग जैसे शब्द उत्पन्न करने वाले यन्त्र पंच शब्द वाजित्र कहलाते हैं। तत एवं वितत में तानपूरा, वीणा आदि तंतु-वाद्य, घन में काँसे जैसी धातु के झाँझ आदि वाद्य, सुषरि में बांसुरी जैसे वाद्य एवं मृदंग में तबले, पखावज, नगारे अथवा ढोल जैसे वाद्य-यंत्रों की गणना की जाती है।

नगरों में नगर-नायिकाएं भी हुआ करती थीं अपार रूपशालिनी राजसभा में तथा नगर में अन्यत्र भी नागरिकों के मनोरंजन के लिए उनका नृत्य हुआ करता था।

नैतिक मूल्य

किसी भी समय की सांस्कृतिक धरोहर उसके द्वारा स्थापित नैतिक मूल्य होते हैं। पद्मनाभ ने अपने काव्य में अपने समय के उच्च नैतिक मूल्यों का विवरण दिया है। जन-समाज में वीरता, विचारशीलता, उदारता एवं त्याग के ऊँचे मूल्य स्थापित थे। परनारी के साथ सहोदर तुल्य व्यवहार, धन के स्थान पर कीर्ति का विस्तार चाहना, कितनी ही कठिनाइयाँ झेलकर भी अपने स्वामी के कार्य को सम्पन्न करना, गौ-ब्राह्मणों एवं अबलाओं की रक्षा करना, एवं धोखे से प्रहार न करके शत्रु को भी चेतावनी देकर मारना श्रेयस्कर समझा जाता था। अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी भी राजा अथवा सम्राट से पुरस्कार प्राप्त न करना एवं स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणम्य न समझना भी स्थापित नैतिक मूल्य थे।

पुरस्कार

पुरस्कार में पंचांग पसाय दिया जाता था। सम्भवतः धोती, कमीज, साफा, अंगोछा (उपवस्त्र) एवं पदत्राण — अंगों को ढकने की इन पाँच वस्तुओं को देना पंचांग-पसाय कहा जाता था। सिर से पाँव तक की वस्तुएँ होने के कारण सम्भवतः बाद में इसी को सिरोपा कहा जाने लगा हो। पंचांग पसाय के अतिरिक्त मुँह-माँगा पुरस्कार भी दिया जाता था। किसी भी शुभ समाचार के लिये भी बधाई माँगी जाती थी। इसी भाँति प्रसन्न होकर पहिरामणी (पहिनने के वस्त्रालंकार) दी जाती थी। पहिरामणी में मात्र एक शिरोवस्त्र दिया जाता था। पुरुषों के लिए यह वस्त्र साफा अथवा पगड़ी एवं स्त्रियों के लिए चुनरी हुआ करती थी। प्रसन्न होकर हाथी घोड़े भी पुरस्कार में दिये जाते थे। लेकिन हाथी-

घोड़ों का पुरस्क़ार मात्र सैनिकों को ही दिया जाता था। संभवतः यह पुरस्कार अपरिमित बल के प्रदर्शन अथवा विजयी होने की अवस्था में ही दिया जाता था।

विजयोत्सव

राजा के विजयी होने पर प्रजा सोल्लास विजयोत्सव मनाती थी। विजयी राजा को प्रजा द्वारा बद्धामणी (बधाई) दी जाती थी। विजय का सन्देश देने रेबारी तीव्रगामी ऊंटनी पर सवार होकर जाया करते थे। प्रजाजन उमंग-पूर्वक अपने-अपने घरों के सामने झंडे फहराते, फर्रियां बांधते तथा राज-पथ पर स्वागत के लिये तोरण द्वारा बनवाते थे। विजयी राजा के स्वागत में रास्ते पर नये वस्त्र बिछाये जाते थे, जिन पर अनेक प्रकार के पुष्प, परिमल-द्रव्य एवं अबीर-गुलाल जैसे सुगन्धित पदार्थ छिड़के जाते थे। इन पर चलकर राजा नगर में प्रवेश करता था। मदनभेरि एवं भूंगल नामक घोष उत्पन्न करने वाले वाद्य यंत्र बजाये जाते थे। प्रजाजनों द्वारा विजयी राजा के नगर-प्रवेश पर राजा की जय-जयकार की जाती थी। इस अवसर पर उत्साहपूर्वक राजा का कीर्तिगान करते हुए सभी बन्दीजन जन समूह के साथ-साथ चलते थे। मौहल्लों के चौकों में जगह-जगह पर रास रचाया जाता एवं विविध प्रेक्षण (नृत्य-नाट्यादि) आयोजित किये जाते थे। स्त्रियां 'लूणलूछणा' कर के विजयी राजा का स्वागत करतीं। विजयी राजा के राजमहल में प्रवेश करते समय रानियां नौरंगे वस्त्र पहिनकर, सर्वालकृंत हो, सोने के थाल में मोतियों का स्वास्तिक जड़कर उस थाल में घुले कुंकुम से राजा के मस्तक पर तिलक किया करती थीं। विजयी राजा एवं वीर सैनिकों के वारने उतारे जाते थे।

नगर एवं दुर्ग

पद्मनाभ ने जालौर नगर की विशालता का भावपूर्ण वर्णन किया है। कवि के अनुसार जालौर का दुर्ग अत्यन्त सुदृढ़ एवं तत्कालीन सुप्रसिद्ध दुर्गों यथा—आमेर, आसेर, चित्रकूट, चांपानेर, मांडवगढ, सालेर, मूलेर, ग्वालेर आदि — दुर्गों से अधिक दुर्गम, जटिल एवं विस्तृत है। जालौर नगर का वर्णन करते हुए पद्मनाभ ने लिखा है कि यह सम्पूर्ण नगर पहाड़ी पर बसा हुआ है एवं नगर की कुछ आबादी तलहटी में बसी है। नगर में बहुत से चौंहटे, चौक एवं चबूतरे हैं तथा बहुत सी गलियां हैं।

गढ़ में अनेक बहु-खंड महल एवं अट्टालिकाएं हैं। गगन चुंबी त्रि-कलशों से शोभित इन सप्तखंडी अट्लिकाओं के प्रवेश द्वार अत्यन्त रम्य हैं। ये महल एवं अट्टालिकाएं मलयागिरी चंदन से रचित जालियों वाले विविध आकार के अनेक गवाक्षों एवं कृष्णगिरी काष्ठ के कोमल स्तम्भों से विजड़ित हैं। महल की भूमि मणि-मंडित है एवं उसके सामने

का प्रांगण मन-मोहक शोभा-सम्पन्न सहस्रभूमि संज्ञक विस्तीर्ण है ।

नगर में विभिन्न दिशाओं से प्रवेश के लिये अलग-अलग मुख्य द्वार थे । इन्हें प्रोलें कहा जाता था । पद्मनाभ ने रामपोल, पाटणपोल, चित्रुड़ी पोल, ढ़ीली (दिल्ली) प्रोल, एवं बारी प्रोल नाम से इनकी परिगणना की है ।

जलाशय

जलापूर्ति के लिये नगर के भीतर अनेक बावड़िया थीं । पद्मनाभ ने झालरवाव, जाबालिकुंड, वारुवाव, साहणवाव, राणीवाव एवं नटरख वाव का मुख्यतः उल्लेख किया है । इन बावड़ियों के अतिरिक्त पद्मनाभ ने भोलेलाव एवं सुंदरलाव नामक दो विशाल जलाशयों का भी उल्लेख किया है, जो कटोरियों की भाँति गहरे, विस्तीर्ण एवं गोलाकार थे एवं जिनमें सदैव अपरिमित जल भरा रहता था ।

कान्हड़-दे प्रबंध में इस तथ्य का भी उल्लेख है कि समय पर वर्षा न होने पर जालोर में प्रायः जल संकट रहा करता था।

मन्दिर

पद्मनाभ ने जालोर नगर में आदि योगिनी आशापुरी, चतुर्मुख ब्रह्मा, गणपति एवं कान्ह स्वामी के शिखरबंद मन्दिर होने का उल्लेख किया है । नगर में अनेक विद्यालय ने, अनेक देवताओं के देवालय तथा विशाल जिन-मन्दिर भी विद्यमान थे । इन मंदिरों पर ऊँची ध्वजा-पताकाएँ फहराती रहती थीं । मन्दिर में भक्त जनों द्वारा आठों प्रहर पूजा-अर्चना होती रहती थी । पद्मनाभ के अनुसार जालोर के नागरिक अन्तर्मन से धर्मपरायण थे । वे धार्मिक कार्य एवं देवार्चन करते रहते थे । कवि के अनुसार सम्पूर्ण जालोर ही कैलाश पर्वत की भाँति पुण्यवान एवं मनोहर था ।

अन्त्येष्टि

कान्हड़-दे प्रबन्ध में अन्त्येष्टि विधान का अत्यन्त कारुणिक चित्रण हुआ है । अन्त्येष्टि से पूर्व शव को स्नान करवाया जाता था । यदि संभव होता, तो शव को यमुना आदि पवित्र नदियों के तट पर ले जाकर चिता बनाई जाती थी । शव का अग्नि संस्कार किया जाता था । अग्नि संस्कार के लिये चंदन, अगर, तुलसी, बिल्ब एवं इमली की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था । प्रियतम की मृत्यु के पश्चात प्रेयसी के यमुनाजल में अपनी देह समर्पित कर मृत्यु का वरण करने का उल्लेख भी हुआ है ।

लोक मान्यता एवं लोक विश्वास

पद्मनाभ· ने अनेक लोक-मान्यताओं का उल्लेख किया है। अवतारवाद में लोगों का विश्वास था। विजय के लिए देव-पूजा आयोजित की जाती थी एवं कुल देवी से आसिका मांगी जाती थी। ज्योतिष, मंत्र एवं शकुन में लोक-विश्वास था।

कान्हड़ दे प्रबन्ध में पद्मनाभ ने एक सम्पूर्ण रूप से जीवन्त समाज का मोहक चित्र अभिलिखित किया है, लोक संस्कृति के जो प्रतिबिंब कान्हड़-दे प्रबंध में प्राप्त होते हैं, वे तत्कालीन जन-जीवन का निष्कपट एवं सविस्तार परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं।

अध्याय चार

शासन प्रबन्ध एवं युद्ध कला

कान्हड़-दे प्रबन्ध तत्कालीन शासन प्रबन्ध एवं युद्ध कला पर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। कवि पद्मनाभ शासन-प्रबन्ध की कला से सर्वथा परिचित है । शासन प्रबन्ध में राजा एवं राजसभा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है अतः पद्मनाभ ने राज-सभा का अपेक्षाकृत विस्तार के साथ वर्णन किया है। पद्मनाभ के अनुसार राजा कान्हड़-दे की राज सभा में राजा का सिंहासन अत्यन्त शोभाशाली है। सिंहासन मेघवर्ण के चंदोबा से युक्त है । पद्मनाभ के अनुसार केतकी, चंपा जैसे पुष्पों तथा गुलाल एवं कर्पूर जैसे सुगन्धित द्रव्यों की गंध से गहगहा रहे पूर्णतः सुवासित सभा मंडप में सभासदों के पंक्तिबद्ध बैठने की व्यवस्था है । पंक्तियों के मध्य आवागमन के लिये स्थान भी छोड़ा गया है।

राजा के सिर पर पंचवर्ण का राज-छत्र सुशोभित है । राजा के दोनों ओर चामरधाराणियाँ चामर डुला रही हैं। राज-सभा में राजा अमात्य मंडल सहित बैठता है।

अमात्य मंडल

पद्मनाभ के अनुसार राजा को समयोचित सलाह देने हेतु एक अमात्य मंडल होता था। इस अमात्य मंडल में राजा के हृदय को जानने वाला प्रधानामात्य (वमलगुनि) राज-पंडित (व्यास) राज्य का लेखा संधारण करने वाले कोषाध्यक्ष, (श्रीगरणा) न्यायाधिकारी, व्ययाधिकारी (वैगरणा), अश्वशालाध्यक्ष (साणहिता), वैद्य अथवा शल्य-चिकित्सक (सेलहुत), राजमन्दिरों का पुजारी (देहवासरि), स्मरण शक्ति सम्पन्न गुप्त सन्देश वाहन के योग्य चर (अवधानियां), भंडारपाल (भंडारी) कोष्ठागारिक (कोठारी) राजस्व, जो अन्न के रूप में ग्रहण किया जाता था, को एकत्रित करने वाले अधिकारी (कणहता) अन्तःपुराधिकारी (महिता राउला) नगर रक्षक अथवा कोतवाल (तलार) राजा के अंगरक्षक (राल गुनि), अन्य बुद्धिशाली जन एवं विभिन्न ग्रामों के शूरवीर राजपूत ठाकुर अमात्य मंडल के सदस्य हुआ करते थे। इस अमात्य मंडल के साथ विशेषतः युद्ध-काल में सदैव मंत्रणा होती रहती थी।

वेतन

सैनिकों के प्रमुख ठाकुर हुआ करते थे। राजा इन ठाकुरों को पारिश्रमिक देता था, उसे 'ग्रास' कहते थे। यह 'ग्रास' गाँव के रूप में दिया जाता था। दिये गये गाँवों की कृषि के उत्पादन का एक अंश ठाकुर अपने एवं सैनिकों के निर्वाह के लिये लिया करते थे। ग्रास भोग करने वाले ठाकुर सैनिकों के अतिरिक्त सेना के लिये घोड़े भी रखा करते थे।

सेना

हिन्दू सेना में प्रायः राजपूत सैनिक ही हुआ करते थे। लेकिन कहीं-कहीं युद्ध में ब्राह्मणों के भाग लेने का उल्लेख भी उपलब्ध होता है। कान्हड़-दे की सेना में चौहान, सोलंकी, वाघेला, यादव, परमार, गुहिल, चावड़ा, राठौड़, आदि छत्तीस राजवंशों के सुंदर, जोशीले एवं जूझार राजपूतों के होने का उल्लेख उपलब्ध होता है। कान्हड़-दे प्रबन्ध के अनुसार राज पंडित सोमचन्द्र व्यास भी राजा कान्हड़-दे के साथ रणांगण में उपस्थित थे।

पद्मनाभ के अनुसार 25 वर्ष से अधिक एवं 50 वर्ष से कम आयु के योद्धा युद्ध में भाग लेते थे। ये वीर आकरणांत मूँछें रखते थे, मेघवर्ण के साफे बाँधते थे, बहुमूल्य वस्त्र धारण किया करते थे एवं पाँवों में नई मोचडियाँ पहने होते थे।

सैनिकों का चरित्र

पद्मनाभ के अनुसार हिन्दू राजा तथा उसके सैनिक अत्यन्त वीर एवं अद्‌भुत पराक्रमी हुआ करते थे। वे शत्रु के आगमन पर प्रसन्नता व्यक्त करते थे—

'आव्या सुणइ म्लेछ मूंछाला रणि राउतवट कीधी।'

इन शूरवीरों का निशाना अचूक हुआ करता था। ये वीर द्वार पर आये विकट शत्रु से एकाकी अथवा अल्प बल होने पर भी थोड़ी देर के लिए ही सही, वीरतापूर्वक लोहा लेते थे—

'घड़ी बि-च्यारि घणउ दल थोम्यउ वीर वावरई लोह।'

पद्मनाभ के अनुसार राजपूत सैनिक उत्साही, वीर, उदार, विचारशील, युयुत्सु, मित-भाषी, कीर्तिकामी, पर-नारी-सहोदर, धैर्यशाली, ललकार कर वार करने वाले, शत्रुओं को मारकर मरने वाले एवं परम स्वामी-भक्त होते थे।

शस्त्रास्त्र

सैनिक तलवार एवं कटारों का प्रयोग करते थे। पद्मनाभ के अनुसार सैनिकों की तलवारों एवं कटारों की मूठें सोने जैसी बहुमूल्य धातुओं एवं हीरों जैसे दुर्लभ रत्नों से विजड़ित होती थीं। त्रिककूट, टांकणा, कोसिस जैसे निकट से वार करने योग्य हथियारों के अतिरिक्त फारकी, ढ़िकुली, मगरबी जैसे यंत्र भी होते थे, जिनसे शत्रुओं पर दूर से प्रहार किया जाता था। मगरबी नामक यंत्र से तलहटी स्थित सेना पर दुर्ग की दीवार से गोले बरसाये जाते थे एवं ढ़िकलियों से भी दूर से पत्थर फेंके जाते थे। दुर्ग से शत्रु सेना में आग लगाने के उद्देश्य से तेल से जलते हुए बाण छोड़े जाते थे। दुर्ग में विविध शस्त्रास्त्रों के विशाल भण्डार सुरक्षित रखे जाते थे।

शस्त्रास्त्रों के प्रहार से बचने के लिये सैनिक विविध भाँति के कवच धारण करते थे। पद्मनाभ ने करांगी, वज्रांगी, अंगरखी, जीवरखी, जीणसाल एवं जरहजीण जैसे कवचों का प्रमुखता से वर्णन किया है।

वस्तु-संग्रह

युद्ध की दृष्टि से मनुष्यों के लिए भोज्य सामग्री एवं घोड़ों के चरने के लिये घास के विपुल संग्रह-भंडार रखे जाते थे। घी और तेल से कुंड अथवा बावडियाँ भरकर रखी जाती थी। भोजन पकाने हेतु ईंधन भी एकत्रित रखा जाता था। इन वस्तुओं का भंडारण सम्बन्धित व्यवसायी किया करते थे। युद्ध के समय ये व्यवसायी राजा को सम्बन्धित वस्तुओं की संपूर्ति का आश्वासन दिया करते थे।

युद्धकला

पद्मनाभ ने हिंदुओं और मुसलमानों—दोनों की युद्ध कलाओं का सांगोपांग वर्णन किया है। राजपूत राजा प्रायः रक्षात्मक युद्ध ही लड़ते थे। अतः राजपूत राजाओं द्वारा सुरक्षा की दृष्टि से उचित, ऊँचे, पहाड़ी स्थान पर मजबूत दीवारों वाला किला बनाया जाता था। किले में ही विशाल जलाशयों को बनवाया करते थे। जिससे युद्ध के समय सम्यक् रूप से जलापूर्ति हो सके वे प्रभूत मात्रा में अन्न, घृत, तेल, कपड़े एवं ईधन का भंडार सुरक्षित रखते थे। किले की दीवारों से शत्रुओं पर 'मगीरब' एवं 'ढ़ेकुली' नामक यंत्रों की सहायता से निशान साध कर पत्थर बरसाये जाते थे। ऊपर से सींगणी से तीर एवं नलियार एवं नालों से अग्निवर्ण के गोले (संभवतः प्रज्जवलित पदार्थ बाँधे हुए पत्थर) फेंके जाते थे। इन यन्त्रों के सूत्रधार इन गोलों को निशाना बाँध कर फेंका करते थे। यंत्रों से राल एवं तेल की सहायता से जलाकर जलते हुए बाणों को भी छोड़ा

जाता था जिससे कि शत्रुओं के शिविर में आग लग जाए। इन रक्षात्मक उपायों से मुस्लिम सेनाओं को हताश होकर अनेक बार शत्रु को परास्त किये बिना ही बैरंग लौट जाना पड़ता था। किन्तु, जब जीवन रक्षक सामग्री समाप्त होने को होती, तो हिन्दू नरेशों को इस रक्षात्मक युद्ध के स्थान पर मैदानी युद्ध लड़ने को विवश होना पड़ता था। अनेक बार प्रतिद्वन्दी को कमजोर समझ कर हिन्दू राजा आक्रामक युद्ध भी लड़ते थे। निश्चित रूप से ये युद्ध मैदानी ही होते।

कान्हड़-दे प्रबन्ध के अनुसार युद्धकामी राजा समीपस्थ एवं दूरस्थ मित्र अथवा आधीनस्थ राजाओं को घोड़े भेजकर युद्ध में सहायता देने के लिये आमंत्रित किया करते थे। भोमियों एवं सामन्तों को उनके सैनिकों के साथ बुलाया जाता था। हिन्दू राजा युद्ध करने से पूर्व अपने-अपने इष्ट-देव की पूजा कर उनसे आशिष लिया करते थे। विरोधी सेना पर आगे होकर आक्रमण करने का भार सौंपने हेतु बीड़ा दिया जाता था। वीर सैनिक अथवा सेनापति शत्रु को परास्त करने हेतु स्वेच्छा से बीड़ा उठाया करते थे। राजा चुनौती स्वीकार करने वाले सैनिकों अथवा सेनापति को अपने हाथ से सम्मानपूर्वक तांबूल का बीड़ा देकर उत्साह-वर्धन किया करते थे। इस अवसर पर ढोल एवं अनेक प्रकार के वाद्ययंत्र बजाकर उल्लास प्रकट किया जाता था। योद्धाओं को उनके मन पसन्द आयुध एवं अश्व दिये जाते थे। विजय पाने हेतु देवताओं को नैवेद्य अर्पित किया जाता था। हाथी, घोड़ों एवं पैदलों की त्रिविध सेना हुआ करती थी। आक्रमण करने के साथ ही सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए सैकड़ों ढोल एवं अन्य वाद्ययंत्र बजाकर युद्धघोष किया जाता था। युद्ध के नारों को सुनकर वीर लोग ऐसे उत्साहित होते थे जैसे उनमें प्राणों का नया संचार हुआ हो।

राजपूत योद्धा साहसी, शूरवीर एवं जुझारु हुआ करते थे। अत्यन्त उत्तेजक शब्दों से शत्रुओं को ललकारते हुए आक्रमण किया जाता था। वीर पुरुष युद्ध के मैदान में जिरहजीण, आंगी, अंगरखी आदि कवच पहीन कर युद्ध भूमि में जाते थे। शत्रु पर चारों ओर से आक्रमण किया जाता था, जिससे कि वह चारों ओर से एक ही स्थान पर घिर जाए और युद्ध से भाग कर बचकर न निकल सके।

युद्ध में तलवार, भाले, क्षंडा, सिंगणी आदि हथियार काम में लाये जाते थे। तलवारों से बेध कर शत्रुओं और उनके घोड़ों को काटा जाता था। युद्ध के अन्त में शस्त्रों को भलीभाँति धोकर स्वच्छ किया जाता था।

मुस्लिम युद्ध नीति हिन्दुओं की युद्ध नीति से विपरीत थी। मुस्लिम आक्रान्ता शत्रु के किले पर सीधा-सीधा आक्रमण न करके किले के चारों ओर से घेर लिया करते थे एवं किले के भीतर के अन्न-जल के भण्डारों के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते थे। वे बस्ती के तमाम ऐसे लोगों को भी, जिनका युद्ध से कोई सम्बन्ध ही नहीं होता था, बन्दी बना लेते थे तथा उन बन्दियों को विविध भाँति से कष्ट पहुँचाकर अत्यधिक पीड़ित

किया करते थे। सुल्तान अपने अधीनस्थ राजाओं से सैन्यबल मँगवाया करते थे। युद्ध के लिये सुल्तान स्वयं भी युद्धभूमि में जाता था एवं अपने प्रमुख मलिकों को भी विशाल सैन्य-बल देकर शत्रु को परास्त करने भेजा करता था।

मुस्लिम-सेना रास्ते में पड़ने वाले नगरों एवं गाँवों को लूटकर जला देती थी। आबाल अबला-वृद्ध स्त्री-पुरुषों को कैद कर लिया जाता था। ब्राह्मणों को निर्दयतापूर्वक मारा जाता था एवं मंदिरों को तोड़-फोड़कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता था। अबला स्त्री-पुरुषों को कैद कर कई-कई दिनों तक भूखा-प्यासा रखा जाता था। उन्हें दिनभर धूप में एवं रातभर शीत में रखकर तड़फाया जाता था। इस तरह के असह्य अत्याचारों से बूढ़े एवं बालक कैदियों की मृत्यु प्रायः निश्चित हुआ करती थी। बालकों को अपने माता-पिता से भी अलग रखा जाता था।

मुस्लिम सेना में सैनिकों की संख्या प्रायः अधिक हुआ करती थी। इनमें हाथियों, घोड़ों एवं पैदल सैनिकों के साथ दास-दासियां भी रहा करती थीं। उपभोग सामग्री की पूर्ति के लिये सेना के साथ बाजार भी चला करता था।

सेना के पड़ाव के चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से काठगढ़ का निर्माण किया जाता था। काठगढ़ चारों ओर खाई खुदवाई जाती थी। रात्रि में चुने हुए चौकीदार पड़ाव की चौकीदारी किया करते थे। काठगढ के चारों ओर कठोर पहरा रखा जाता था।

यद्यपि मुस्लिम सैनिक भी दुर्दान्त वीर होते थे, तथापि वे विजय प्राप्ति के लिये प्रायः बहुत ही निम्नस्तर के हथकंडे काम में लिया करते थे। सार्वजनिक जलाशयों में धार्मिक दृष्टि से अखाद्य वस्तुएं तथा गौमांस इत्यादि डलवाकर जलाशयों को भ्रष्ट करवा दिया जाता। जनता के तथा स्वयं के प्यासे मरने की प्रबल संभावना समझकर शत्रु राजा को किले से उतरकर प्रत्यक्ष युद्ध करने के लिए विवश होना पड़ता था अथवा हार मानकर शरण स्वीकार करती पड़ती थी।

जलाशयों को भ्रष्ट करने हेतु वे पाशिब बँधवाया करते थे। संभवतः लकड़ियों, घास और त्रिपाल के ढ़ेर को शत्रु के किले से भी ऊँचा बनाया जाता था। पाशिब पर चढ़कर मगरबी जैसे यंत्रों की सहायता से शत्रुओं के तालाबों में गौ-मांस डालकर उन्हें भ्रष्ट किया जाता था। शत्रुओं के पक्ष से आये हुए दूतों को अनेक प्रकार की भेंट देकर सत्कार किया जाता था। इस भेंट एवं सत्कार द्वारा उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न भी किया जाता था।

हारे हुए मुस्लिम सैनिक प्राणों के भय से व्याकुल हो, नंगे बदन, भूखे-प्यासे छिपकर भागा करते थे। हिन्दू योद्धा भागते हुए दुश्मन को पकड़ने में अपना अपमान समझते थे एवं प्रायः उन्हें भाग जाने देते थे। मुस्लिम राजधानी में जब हार का समाचार पहुँचता तो बड़ा क्रन्दन मचा करता था। पद्मनाभ ने मुस्लिम सेना के पराजय के समाचारों से उत्पन्न स्थिति का अत्यन्त कारुणिक वर्णन किया है। हारा हुआ सेनापति अँधेरे में मुँह

छुपाकर नगर में प्रवेश किया करता था। हार के समाचार सुनकर औरते बुक्का फाड़कर रोया देती थीं और अपने शृंगार बिखेर देती थीं। कुछ औरतें असह्य वेदना से बेहोश भी हो जाया करती थीं। हारे हुए सैनिकों की बिलखती हुई स्त्रियां सेनापति को शाप दिया करती थीं। इस प्रकार के रुदन-क्रन्दन से शनैः-शनैः बादशाह तक हार का समाचार पहुंचा करता था। बादशाह बचे हुए सैनिकों को बुलवाकर पराजय के सारे समाचार विस्तार से जाना करता था।

हिन्दू राजा अपनी पराजय को सन्निकट जानकर शत्रु से सन्धि करने अथवा पराजित होकर बन्दी बनने के स्थान पर अपनी रानियों द्वारा जौहर करने एवं स्वयं अपने समस्त सैनिकों के साथ केसरिया वस्त्र पहन कर शत्रु के साथ अंतिम दम तक युद्ध करते हुए मरने को उचित समझते थे। जौहर एवं केसरिया करने के औचित्य का आधार संभवतः यह था कि मुसलमानों द्वारा युद्ध-बंदियों को दास बनाया जाता था। नैसर्गिक रूप से राजन्यवर्ग के लोगों के लिये दासत्व जैसा हीन कोटि का कार्य करना मरने से भी अधिक कष्टकर होता था। आगे की पंक्तियों में जौहर तथा केशरिया करने की नीति तथा रीति पर विस्तार से प्रकाश डाला जा रहा है।

जौहर

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जौहर को जतुग्रह से व्युत्पन्न शब्द माना है (जतुगृह—जउगृह—जउघर—जउहर—जौहर)। किंतु कान्हड़-दे प्रबन्ध में पद्मनाभ ने जउहर के स्थान पर जमहर का प्रयोग किया है जो स्पष्टतया यमगृह से व्युत्पन्न है। केसरिया करने से पूर्व राजा अपनी रानियों, सामन्तों एवं समस्त प्रजाजनों से विचार-विमर्श करता था। केशरिया करने का निश्चय होने पर रानियां भावी जन्म में भी उसी पति की प्रीति प्राप्त करने की कामना करते हुए जौहर करने का निश्चय करती थीं। स्त्रियां स्नान के पश्चात् षोडष शृंगार कर, सूर्य का पूजन कर, रामनाम की वाणी का उच्चारण करते हुए अग्नि में प्रवेश करती थीं। जौहर की अग्नि के लिये चंदन, अगरु, बिल्व एवं इमली के काष्ठ का प्रयोग किया जाता था। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार जौहर का वर्णन वर्तमान युद्ध नीति में Schorched Earch Policy के समतुल्य हैं, जिसका उद्देश्य यह होता है कि कोई भी उपयोगी वस्तु, चाहे उसे नष्ट ही क्यों न करना पड़े, शत्रु के हस्तगत न हो। जौहर में स्त्रियों के अतिरिक्त हाथी, घोड़ों की भी आहुति दी जाती थी एवं समस्त स्वर्ण—रत्नादि सार-द्रव्य कुओं अथवा बावड़ियों में फेंक दिया जाता था।

अन्न प्रतिज्ञा

युद्ध में विजय प्राप्ति के संकल्प की दृढ़ता के लिए अन्न-प्रतिज्ञा करने का प्रचलन था। प्रतिपक्ष पर सत्वर विजय का संकल्प लेकर यह प्रतिज्ञा की जाती थी कि जब तक राजा शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं करेगा, वह भोजन नहीं करेगा। अन्न प्रतिज्ञा संकल्प की दृढ़ता की सूचक हुआ करती थी। राजा के अन्न न लेने की प्रतिज्ञा करने पर सैनिकों का मनोबल एवं नैतिक बल बढ़ जाता था एवं राजा के प्राण बचाने की दृष्टि से युद्ध में भावना-जन्य आवेग बढ़ जाता था। कान्हड़-दे प्रबन्ध में राजा कान्हड़-दे के अन्न प्रतिज्ञा करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

केसरिया करना

स्त्रियों के जौहर करने के पश्चात् राजपूत राजा अपनी बची-खुची सेना के साथ केसरिया किया करते थे। राजा एवं राज-परिवार के पुरुष नहा-धोकर तुलसीदल धारण कर, चंदन-चर्चित हो, शालिग्राम का पूजन कर, राम-नाम का जप करते हुए श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों के पाँव धोकर उन्हें यथा शक्ति दान देते थे। ब्राह्मण-गण केसरिया करने वाले इन वीर पुरुषों को हृदय से आशीर्वाद देते थे। इस अवसर पर समस्त प्रजा एकत्रित होकर राजा को जुहार करती थी। इस तरह से एक प्रकार से जनादेश प्राप्त कर राजा समस्त राजपूत-योद्धाओं के साथ शत्रु सेना के बीच धंसकर शत्रुओं को वेगपूर्वक काटते हुए मरणान्तक युद्ध करता था।

जौहर एवं केशरिया करने से पूर्व राजा द्वारा राजवंश के एक कुमार को सिंहासनाधिकार दिया जाता था। कान्हड़-दे ने वीरम-दे को अपना सिंहासनाधिकार दिया था।

वीरत्व का सम्मान

उन दिनों वीरत्व का बड़ा सम्मान किया जाता था। किसी भी योद्धा को मरने पर मारने वाला वीर उसके शव को प्रणाम किया करता था। स्वयं सुल्तान अल्लाउद्दीन ने सातल-दे के रुधिर का वंदन कर उसके वीरत्व की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी—

सांतल तणउं रुधिर सुरताणि।
बांधउ वीरायतन वषाणि॥

प्रायः वीर लोग मृत्यु की परवाह नहीं किया करते थे। 'जातस्य ही ध्रुवोमृत्यु' की धारणजन-सामान्य में प्रचलित थी—

षूटई काल मरइ सहू कोय।

जीवन में मृत्यु एक ही बार होती है अतः अपनी आन-बान पर मर मिटने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए तथा किसी भी भय से अपने कुलाचारों का लोप नहीं करना चाहिए, यह मान्यता शूरवीरों के हृदय पटल पर दृढ़तापूर्वक अंकित थी—

पद्मनाभ पंडित भाणइ
जेह कुलि जे आचार।
लोप न कीजइ तेह तणु
मरण न बीजी वार॥

अध्याय पाँच

पद्मनाभ का काव्य-सौन्दर्य

पद्मनाभ रचित 'कान्हड़-दे प्रबन्ध' में काव्य की वे सब काव्यगत विशेषताएँ उपलब्ध हैं, जो किसी भी काव्य को महनीय बनाने के लिये पर्याप्त हैं। पद्मनाभ प्रमुख रूप से सांस्कृतिक जागरण के स्वर मुखरित करने वाला कवि है। कवि को स्वधर्म पर अत्यधिक गर्व है और इस गर्व को उसने अत्यन्त ऊर्जस्वित स्वरों तथा विविध एवं विपुल वेगवान शैली से उजागर किया है। उसका हिंदू सविवेक वचनों का वक्ता, विविध व्यंजनों का भोक्ता, शृंगार एवं कलाओं का उपासक है। पद्मनाभ ने स्वदेश एवं स्वधर्म के लिए, कहना चाहिए, मानवीय मूल्यों के लिये किये जाने वाले बलिदान को समस्त यज्ञों, समस्त तीर्थों एवं समस्त दानों से भी उच्च कोटि का माना है,—

जे पद नहीं त्याग नइ तीरथि, घणई दानि त्रैलोकि।
सोमनाथना चांडि मरंता ते पुहुता सुरलोकि।

वीरगाथात्मक चरितकाव्यों की विशेषता के अनुरूप कवि पद्मनाभ ने भी अपने आश्रयदाता राजा अखयराज के पूर्व पुरुषों की वीरता का भव्य वर्णन किया है। उसने राजा कान्हड़-दे को अत्यन्त विचारवान पुरुष बताया है। वह अश्विनीकुमारों के समतुल्य रूप-सम्पन्न तो है ही, उसमें अनेक आदर्श मानवीय गुण भी हैं। राजा कान्हड़-दे दरिद्रों को दान देता है। वह वीर क्षत्रियों के बलिदान की राह को जानने वाला है। वह अपने अनुज मालदेव से इतनी ही प्रीत रखता है जितनी कि श्री राम की अपने भाई लक्ष्मण से प्रीति थी। राजा कान्हड़-दे मात्र वैभवशाली ही नहीं, अत्यन्त पुण्यशाली भी है। पुण्य के प्रभाव से ही उसे रिद्धिसिद्धि प्राप्त है। वह वचनों का पालन करने वाला है। भारतीय युद्धनीति के अनुसार वह शत्रुओं पर रात्रि में आक्रमण नहीं करता। वह मरने से पूर्व अपना सर्वस्व दान देने वाला, तथा विप्रों एवं गायों का रक्षक है। पद्मनाभ ने अपने काव्य नायक कान्हड़-दे को विष्णु के समान अवतारी पुरुष माना है। राजा कान्हड़-दे वीर-गति प्राप्त करने के पश्चात अपने ही लोक—विष्णु लोक को जाता है। इस प्रकार पद्मनाभ ने चरित नायक कान्हड़-दे की अत्यन्त भाव-पूर्ण शब्दों में प्रशंसा की है।

पद्मनाभ तत्कालीन काव्य प्रतिमानों के अनुसार सजीव वर्णन करने में सिद्धहस्त

कवि है। मुख्यतः वह युद्ध का कवि है। अपने काव्य में उसने सेना-संचरण का विशद वर्णन किया है। उसका चित्रांकन इतना सूक्ष्म, इतना व्यापक एवं इतना विस्तृत है कि पाठकों को लगता है; मानों पाठकों के समक्ष सेना ही सजीव रूप से चल रही हो। कवि ने जालोर दुर्ग का वर्णन अत्यन्त तन्मयता से किया है। जननी जन्मभूमि स्वर्ग से भी सुंदर होती है, तो फिर कवि की मातृभूमि का गढ़ विश्व में अद्वितीय क्यों न हो ? कवि ने विभिन्न गढों की गणना करते हुए बताया है कि कोई भी दूसरा किला जालोर से तुलनीय नहीं है। किले में बहुत घूघरे बज रहे हैं जो संदेश वाहकों—रेबारियों—के त्वरा पूर्वक आवागमन के कारण बज रहे हैं। पद्मनाभ ने सेना के प्रयाण का अत्यन्त रोमांचक एवं प्रभावशाली वर्णन किया है। सेनाप्रयाण के समय समयाभाव के कारण सेना सिके हुए धान को चलते हुए ही खाती है। धान सेकने के लिए भटियारे सेना के साथ ही चलते हैं। मद-मस्त हाथियों को सजा कर उनके गले में रणझंकार करने वाले विशाल घंटे बांधे जाते हैं। सेना के हाथी इतने उद्धत हैं कि वे महावत के अंकुश को ही नहीं मानते। पंक्तिबद्ध चलते हुए हाथी ऐसे लगते हैं मानो कोई प्रलंब पर्वतमाला ही चल रही हो। ढ़ोल एवं निशान जोर-शोर से बज रहे हैं। घोड़ों की सेना अलग से ही चल रही है। सेना का रास्ता बनाने के लिए पत्थर तोड़ने एवं विषम भूमि को समतल बनाने के लिए मजदूरों के दल के दल औजारों के साथ-साथ में चलते हैं। सेना के प्रयाण की तैयारी के इतने सजीव एवं ऐसे विस्तृत वर्णन कान्हड़-दे प्रबंध के पाठकों को विस्मय विमुग्ध करने के लिए पर्याप्त है।

सेना-प्रयाण के पारंपरिक वर्णन भी कान्हड़-दे प्रबंध में विद्यमान हैं। अगणित सैनिकों के पादाघातों से गगन में उड़ती धूलि से इतना अंधकार छा जाता है कि गगन-मंडल में सूर्य तक दृष्टिगत नहीं होता। इस प्रकार पद्मनाभ ने सेना के प्रयाण का अत्यन्त विशद एवं जीवन्त वर्णन किया है।

कान्हड़-दे प्रबन्ध यद्यपि विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक काव्य है तथा इसमें प्रणय के चित्रों को चित्रित करना न तो संभव है तथा न ही कवि को अभीष्ट ही है, तथपि पद्मनाभ ने वीरमदेव के साथ अल्लाउद्दीन की पुत्री सीतई के एक पक्षीय प्रेम का अद्भुत वर्णन किया है। वह अपने सम-वयस्क राजकुमार वीरमदेव को लीला-विलासी पुरुष मानती है। वह अपने पिता से आग्रहपूर्वक कहती है कि—

रूप वेष वय सरीषइ भावि,
कान्हकुंयर मुझनि परणावि।

शहजादी की इस याचना को सुल्तान अल्लाउद्दीन तो मान लेता है किन्तु शहजादी के विधर्मी एवं विदेशी रक्त की होने के कारण वीरमदेव इस विवाह को करने के लिए तैयार नहीं होता। वीरमदेव के अनुसार विधर्मी से विवाह करने के कारण चौहानों के

निष्कलंक कुल में कलंक का टीका लगने की संभावना बन सकती है। वीरमदेव इस बात को जानते हुए भी कि इस इन्कार का परिणाम मृत्यु ही है, निड़र होकर विवाह के लिए अस्वीकृति दे देता है। पद्मनाभ की यह मान्यता है कि जन्म-मरण के विधि-निश्चित समय में एक पल भी आगे पीछे होना संभव नहीं है—

जन्म मरणना अक्षर मांहि,
आघी पाछी घडी न थाइ।

स्वाभाविक रूप से इस इंकार की परिणिति युद्ध में होती है। युद्ध में कान्हड़-दे की हार के साथ वीरमदेव भी मारा जाता है। शहजादी वीरम-दे के सिर को लेकर सती होने को लालायित है, किन्तु वीरम-दे का निर्जीव सिर भी शहजादी के सम्मुख न होकर उससे विमुख ही रहता है—

एक असंभम ते भणउं, जे नीर तरया पाषाण।
मरण पूठि मस्तक फिरिउं, बीजूं ए परमाण॥

इस अवसर पर शहजादी के रुदन गीत में प्रयुक्त विप्रलम्भ शृंगार की पंक्तियों के पश्चात् वीरम-दे के मरण से पाठकों के मन को द्रवीभूत करने वाला करुण चित्र उपस्थित होता है।

भारतीय वीर-काव्य-परंपरा के अनुसार कवि ने ऐतिहासिकता की अपेक्षा कल्पना को प्रचुर स्थान दिया है। यद्यपि कवि का मन चरित्र-नायकों के प्रणय एवं वीरता के अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रांकन में अधिक रमा है, तथापि उनका तथ्यात्मक लेखन इतिहासविज्ञों के लिए निर्विवाद रूप से ग्राह्य रहा है।

काव्यगत विशेषताएँ

प्रज्ञा एवं प्रतिभा का परिचय पद्मनाभ के काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। तत्कालीन भारत के अधः पतन की स्थिति में भी उसने व्यापक कवि दृष्टि से एक ऐसे विषय को काव्य का उप-जीव्य बनाया जिसमें तत्कालीन समाज की अपनी आदर्श परंपरा का उज्जवल रूप देखा जा सके।

मौलिकता किसी कवि का खास धर्म होती है। स्वाभाविक रूप से किसी भी घटना में कुछ रहस्यों की ओर नवीन दृष्टि डालना एवं कथा सूत्र में किंचित परिवर्तन कर नयी उद्भावनाओं को जन्म देना किसी भी कवि को महान बनाता है। मौलिक उद्भावनाओं के अभाव में कोई भी काव्य साधारण से अधिक प्रभावशाली नहीं बन पाता। पद्मनाभ चूंकि अपने समय का अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न कवि है, अतएव उसके काव्य में अनेक मौलिक उद्भावनाएँ दृष्टिगत होती हैं। निर्विवाद रूप से इन मौलिक उद्भावनाओं ने

पद्मनाभ जैसे महाकवि के काव्य को अत्यन्त महनीय एवं रोचक बना दिया है। पद्मनाभ के काव्य की कुछ मौलिक उद्भावनाएँ आज भी भावुक पाठकों के मन को मोह लेने में समर्थ हैं।

पद्मनाभ भावना प्रवीण एवं ओजस्वी कवि है। उसकी समस्त उद्भावनाएँ भी अत्यन्त ओजपूर्ण हैं। अल्लाउद्दीन द्वारा सोमनाथ के मंदिर को तोड़े जाने एवं शिवलिंग के तोड़े जाने पर कवि अत्यन्त क्षुब्ध है। वह स्वयं शिव से ही उसकी अपनी इस दयनीय स्थिति के होने पर निर्भीक प्रश्न करता है कि हे सोमनाथ, पौराणिक संदर्भों के अनुसार तुमने भीषण क्रोध से समस्त दैत्यों को मार डाला था एवं त्रिपुर का विध्वंस किया था। तुमने ही देवताओं को पापी राक्षसों के भय से मुक्त करवाकर पुनः पुण्य-कर्म करने का सूत्रपात किया था, तुमने कामदेव को भी भस्म कर दिया था। हे त्रिपुरारि, मुसलमानों के आक्रमण के समय तुम्हारे उस प्रलयंकारी त्रिशूल का तुमने क्या किया ? इस विध्वंस में तुम्हारा वह त्रिशूल काम क्यों नहीं आया ?

आगइ रुद्र घणइ कोपानलि, दैत्य सवि तईं बाल्या।
तईं पृथ्वी मांहि पुण्य वरताव्या, देवलोकि भय टाल्या॥
तईं बालिउ काम त्रिपुर विध्वंसिउ, पवनवेगि जिम तूल।
पद्मनाभ पूछइ सोमईया, केथूं कर्‌यउं त्रिसूल॥

कवि का यह प्रश्न अत्यन्त सहज तो है ही, पारंपरिक मान्यताओं से हटकर मौलिक उद्भावना से परिपूर्ण भी है।

संभवतः मूर्ति पर चूहा चढ़ जाने पर ऋषि दयानन्द की भी यही मानसिक स्थिति रही होगी।

ऐसी ही नव-नवोन्मेषिणी प्रज्ञा-पूर्ण दूसरी उद्भावना है—गंगा-गौरी का संवाद! पद्मनाभ ने कान्हड़-दे के एक ऐसे स्वप्न-दर्शन की उद्भावना की है, जिसमें राजा कान्हड़-दे को स्वप्न में गौरी एवं गंगा बिलखती हुए दीखती हैं। वे बिलखती हुईं कान्हड़-दे से प्रश्न करती हैं कि तुम्हें यह राज्य किसने दिया ? कान्हड़-दे स्वप्न में ही उत्तर देता है कि यह राज्य ईश्वर की देन है। गौरी कहती है कि तुम्हारा ईश्वर तो तुर्कों की कैद में है। गंगा कान्हड़-दे को उत्प्रेरित करती हुई कहती है कि तुम अभी तक क्या सोच रहे हो ? हे वीर! उठो, एवं युद्ध करो, क्योंकि तुम्हारे राज्य की सीमाओं से होकर सोमनाथ को अल्लाउद्दीन की सेना ले जा रही है। गंगा पौराणिक दृष्टान्त देते हुए कहती है कि एक बार पूर्व में भगवान राम ने भी दैत्यों से शिव को छुडवाया था। दूसरी बार वैरोचनी बलि ने विशेष भक्ति दारा शिव को कैद कर लिया था, जिसे बलि से भगवान विष्णु ने मुक्त करवाया था। अब तीसरी बार फिर सुल्तान अल्लाउद्दीन की सेना ने शिव को कैद कर लिया है अतः उन्हें तुम छुडवाओ। कान्हड़-दे स्वप्न में देखते हैं कि गंगा एवं गौरी

दोनों अत्यन्त ही व्याकुल होकर बिलख रही हैं। उनके स्वामी बन्दी हैं और वे दोनों विरहजन्य-अग्नि में दग्ध हो रही हैं। वे कान्हड़-दे से म्लेच्छों से छुड़वाने के लिए करुण स्वरों में निवेदन कर रही हैं। पद्मनाभ की यह उद्भावना मौलिक तो है ही, कान्हड़-दे को कृष्ण रूप में स्थापित करने हेतु पौराणिक मान्यताओं के अनुरुप भी है। पौराणिक मान्यता यह है कि शिव के असुरों द्वारा आक्रान्त होने पर समय-समय पर विष्णु ने ही उन्हें असुरों के चंगुल से मुक्त करवाया था।

इसी प्रकार पद्मनाभ की एक चकित करने वाली मौलिक उद्भावना भगवती आशापुरी द्वारा सातल-दे को सुल्तान अल्लाउद्दीन में शिव के दर्शन करवाना है। सातलदे अपनी आराध्या देवी आशापुरी से हाथ जोड़कर विनय करता है कि तुम असुरों का संहार करो एवं मेरे संकट दूर करो। अत्यन्त प्रसन्न होकर देवी अंबिका ने सातल-दे को प्रत्यक्ष दर्शन दिये तथा उसकी बांह पकड़कर उसे उस स्थान पर ले गयी जहाँ सुल्तान अल्लाउद्दीन सोया हुआ था। सातल-दे ने देखा कि सोते हुए अल्लाउद्दीन के तीन नेत्र, पांच मुँह, सुविशाल कपिला जटा, रुण्डमाल युक्त ग्रीवा, हाथ में तूम्बा एवं ब्रह्म-कपाल, जटामुकुट में प्रवाहित गंगा, अंग-प्रत्यंग में भस्म का प्रलेप, कटि तट पर बाघाम्बर एवं भुजाओं में त्रिशूल शोभित है। वह यह देखकर अत्यन्त अचम्भित हुआ कि सुल्तान तो स्वयं ही रुद्र-रूप है फिर वह उसे कैसे मारे। अतः वह निराश होकर अपने महलों में लौट आया—

रुद्र रूपि सुरताण अवतरिउ, किम घालीजई घाउ।
हियई वात विमासी सांतलि, पाछउ दीधउ पाउ ।।

प्रबल शत्रु में अपने ही आराध्य भगवान शिव के दर्शन करवाने की कल्पना वस्तुतः पद्मनाभ की बड़ी चमत्कारित उद्भावना है।

इस उद्भावना से पद्मनाभ ने सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर के रूप में देखकर अद्वैत-दर्शन को प्रतिष्ठित तो किया ही है, यह भी बताना चाहा है कि जहाँ-जहाँ विध्वंसक शक्तियां हैं, वहाँ-वहाँ सम्भवतः शिव स्वयं उपस्थित हैं। आज जो लोग सांप्रदायिक एकता एवं भावात्मक एकता की बात करते हैं, क्या वे प्रचण्ड शत्रु में भी अपने परम आराध्य परमात्मा के दर्शन करने जैसी मनोभूमि उत्पन्न कर सकते हैं? ऐसी मार्मिक उद्भावनाओं से पद्मनाभ विश्व मानवतावाद ही नहीं विश्व देवत्ववाद की भाव-भूमि अलंकृत करते प्रतीत होते है।

कान्हड़-दे का एक ठाकुर महिप देवडा मृत्यु के भय से युद्ध भूमि से भाग आया। भोजन के समय उसका पुत्र काँधल अपनी माँ से कहता है कि माँ, तुम भोजन परोसते समय चम्मच (कांसियां) को जोर से मत बजाना। क्योंकि लोहे के टकराने से उत्पन्न ध्वनि से डरकर मेरा पिता भाग जाता है, अतः वह तुम्हारे द्वारा इन बर्तनों के टकराने की ध्वनि को सुनकर अत्यन्त भयभीत होकर भाग जायेगा। काव्य में इस मार्मिक उक्ति का अत्यन्त

स्वाभाविक प्रभाव भी प्रदर्शित किया गया है। पुत्र की यह उक्ति यह सुनकर लज्जित होकर महिप देवडा न केवल युद्ध में सम्मिलित हुआ, अपितु प्रचण्ड वेग से लड़ता हुआ अनेक शुत्रओं को मारकर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

पद्मनाभ की यह उद्भावना सर्वथा मौलिक एवं हृदयग्राही है। आधुनिक काल के अनेक रचनाकारों ने भी इस उद्भावना को अपनी साहित्यिक कृतियों में स्थान दिया है। अपने ही पुत्र द्वारा पिता की कायरता पर उसकी पत्नी ही के समक्ष इस प्रकार की भर्त्सना का अत्यन्त स्वाभाविक प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। बहुत परवर्ती महाराजा जसवंतसिंह, (जोधपुर) की माँ ने भी महाराजा जसवन्तसिंह के हरमत के युद्ध से जान बचाकर भाग आने पर अपनी पुत्र-वधू को सम्बोधित कर इसी प्रकार की व्यंग्योक्ति कही थी कि बहू! तुम कढ़ाई में चम्मच धीमे से बजाना क्योंकि युद्ध भूमि में लोहे से लोहे को टकराते देखकर मेरा पुत्र युद्ध भूमि से भाग आया है। परिणामतः जसवन्तसिंह भी युद्ध में पुनः सम्मिलित हुआ था।

पद्मनाभ द्वारा एक और मौलिक, मार्मिक एवं हृदयग्राही उद्भावना की कल्पना की गई है, वह है—शहजादी सीतई द्वारा वीरम-दे के प्रति राग-भावना। अल्लाउद्दीन की पुत्री सीतई (फिरोजा) द्वारा कान्हड़-दे के पुत्र वीरम-दे के प्रति राग-भावना एवं विवाहेच्छा क्या पद्मनाभ की कोरी अद्भुत एवं मौलिक कल्पना ही है। भारतीय इतिहास के महान् विद्वान एवं मेरे श्रद्धेय मित्र स्वर्गीय रावत सारस्वत ने भी एक चर्चा के दौरान अभिव्यक्त किया था, कि फिरोजा के प्रणय-निवेदन को केवल कवि-कल्पना के रूप में ही न मानकर इसे इस वास्तविकता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए कि भारतीय संस्कृति की मुख्यधारा से जुड़ने के लिए तत्कालीन शासकों ने अवश्य प्रयत्न किये होंगे, और अपनी पुत्रियों को भारतीय नरेशों को देना चाहा होगा। सीतई (फिरोजा) का यह प्रसंग शासकों की उसी भावना का प्रतिनिधित्व करता है। श्री सारस्वत का यह भी मानना है कि विचार-धारा के इस संकीर्ण दृष्टिकोण से ही कि विधर्मी बहू के आने पर तो पूरा परिवार ही धर्म-भ्रष्ट हो जाएगा, हिंदू नरेशों ने मुस्लिम बहुओं को लाना उचित नहीं समझा, जब कि परवर्ती काल में 'एक बेटी ही तो घर से जाएगी' यह सोचकर विधर्मी शासकों को अपनी बेटियां देने में इन्हीं हिन्दू नरेशों को कोई खास आपत्ति नहीं हुई। अब तक के इतिहास में सदैव शासक एवं आक्रामक राजा ही पराजित रानियों अथवा राज-पुत्रियों के साथ विवाह-संबंध स्थापित किया करते थे एवं स्वयं अल्लाउद्दीन ने भी कमला देवी-देवल देवी प्रसंग में ऐसा ही किया था, किन्तु अल्लाउद्दीन की पुत्री द्वारा वीरम-दे के साथ विवाह-प्रस्ताव पाठकों को भले ही आश्चर्य में डाले, अकल्पनीय नहीं माना जाना चाहिए। कान्हड़-दे प्रबंध के अनुसार वीरम-दे रुढ़ियों अथवा परंपराओं के कारण यह विवाह स्वीकार नहीं करता। तत्पश्चात् तो कवि की कल्पना अत्यधिक भावुकतापूर्ण एवं करुणापूर्ण बनी है जब मृत्यु के उपरान्त भी अनन्य प्रेमी का शहजादी सीतई वीरमदे के सिर के साथ सती

होना चाहती है, और प्रस्ताव अस्वीकृत कर्ता इन्कार किया हुआ वीरम-दे का मुख मरकर भी प्रणयपूर्ण भावना से शहजादी के सम्मुख नहीं रहता—

एक असंभव ते भणउं, जे नीर तर्‌या पाषाण।
मरण पूठि मस्तक फिरिउं, बीजू ए परमाण॥

कवि की इन भावपूर्ण मौलिक परिकल्पनाओं के कारण पद्मनाभ की यह काव्य-कृति अत्यधिक मार्मिक एवं हृदयग्राही बनी है। पद्मनाभ ने अपने काव्य में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं, स्थितियों एवं विसंगतियों का अत्यन्त मुग्ध करने वाला चित्रण तो किया ही है, किन्तु पद्मनाभ का सर्वाधिक महनीय कर्तृत्व यह है कि उसने किसी क्रूर आततायी आक्रान्ता के विरुद्ध देशवासियों की राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया और कोई अचंभा नहीं कि इसी काव्य की प्रेरणा से बाद के युग में दिव्य राष्ट्रीय चेतना को धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित करने वाले राणा सांगा जैसे महान् वीर उठे हों। उन्होंने अपने चरित्र नायक कान्हड़-दे को विष्णु का ऐसा अवतार घोषित किया है, तो कष्ट से पीड़ित दीन-दुखी जनता का उद्धार करने के लिए मरण का वरण करने को सदैव तत्पर है।

रस निरुपण

कान्हड़-दे प्रबंध मुख्यतः वीररस का काव्य है क्योंकि इसमें मुख्य रूप से वीररस का ही परिपाक हुआ है। स्थाई भाव के रूप में उत्साह भाव संपूर्ण काव्य में ही सम्यक् रूप से व्याप्त है। कान्हड़-दे प्रबंध में युद्धोन्माद का ओजस्वी वर्णन सर्वत्र ही वीर रस का अद्‌भुत परिपाक करता है। उत्साह भाव का सर्वत्र ही वेगवान उद्रेक वीर रस का प्रमुख पोषक तत्त्व है।

वीररस का आश्रयस्थल हृदय है। विभावों से उद्दीप्त चतुर्दिक उद्दीपन विजय कामना अथवा वीरतापूर्वक मृत्यु की कामना रूपी संचारी भावों से परिपुष्ट होकर वही विभाव वीररस रूप में निष्पन्न होता है। पद्मनाभ के काव्य में उत्साह का यह उद्रेक सर्वत्र ही दृष्टिगत होता है—

अंगों अंगि भिडइ मनरंगि।
सहई प्रहार तेहनई अंगि॥
हठि चडीउ सोनिगिरू राउ।
प्राणइ बिहथी मेल्हइ घाउ॥

सेनाओं के संचरण को अत्यधिक सजीवता से चित्रित करते हुए सैनिकों के

युद्धोत्साह को प्रकट किया गया है। रण-सज्जा, सैनिकों का उत्साहपूर्वक प्रस्थान, युद्ध स्थल का चारु चित्रण, शस्त्र कौशल, सेनाओं के संचरण एवं मुठभेड़ का दारूण कोलाहल, शत्रुओं की तीव्र वेग से चलती तलवारों एवं कायरों के भय की स्थिति सर्वत्र ही व्यापक रूप से चित्रित हुई है। सैनिकों के चलने से सूर्य धूल से ढके तारे की तरह धूमिल दृष्टिगत होने लगा है। कान्हड़-दे के सैनिकों ने वेद एवं पुराणोक्त धर्म की रक्षा के लिए दुंदुभी बजायी है और युद्ध को यज्ञ की तरह की पवित्र माना है। बलिदान को अमरता देने की भावना से कवि ने घोषणा भी की है कि सोमनाथ की युद्ध में मरने वाले सैनिक सीधे स्वर्गलोक में पहुँचे —

धारा तीरथ पाम्या जेउ।
अमर लोक सवि पुहुता तेउ।।

इसी तरह से सातल-दे का वर्णन करते हुए कवि अत्यन्त उत्फुल्लता पूर्वक कहता है कि सातल की पराजय निश्चित है, उसे यह भी ज्ञात है कि अल्लाउद्दीन शिव का अवतार है, लेकिन दुश्मन चाहे शिव का अवतार ही क्यों न हो, वीर पुरुष उसके समक्ष नतमस्तक नहीं होते। वे अपने प्राण ही न्यौछावर करते हैं, शत्रु से समझौता नहीं करते। इसी दृढ़ निश्चय के साथ सातल अपने साथियों के साथ केसरिया पहनकर वीरतापूर्वक मरण को स्वीकार करता है। यही स्थिति कान्हड़-दे की भी है। उसे भी यह पता है कि भंड़ार किया हुआ अन्न पुराना पड़कर शक्ति देने वाला नहीं रहा और अन्न, रस एवं शास्त्रास्त्रों का भंडार भी लगभग समाप्ति पर है, तब भी वह युद्ध से विरत नहीं होता।

पद्मनाभ ने अनेक वीरों का नाम ले-लेकर उनकी वीरता का बखान किया है। ये वीर शत्रु के हाथ में जीते जी पडना नहीं चाहते, इसलिए अपने उदर में कटारी लेकर स्वयं ही अपनी मृत्यु का प्राक्-वरण करके दुश्मन को मारने निकलते हैं—

वीरमदे जाणिउं अनुमानि, वीटी तुरक झालिसइ बानि।
वीर वचन मुषि विसमां जंपि, उंडी उदरकि कटारी चंपि।।

पद्मनाभ लड़ते हुए वीरों के चेहरे को पूर्णिमा के निष्कलंक चन्द्र के समान देखता है। इस तरह से कान्हड़-दे प्रबन्ध में सर्वत्र ही युद्धोत्साह प्रकट होता है और वीररस का पूर्ण परिपाक होता है। पद्मनाभ ने युद्धोत्साह का चित्रण करते हुए पौराणिक प्रसंगों को भी चित्रित किया है। क्षत्राणियों का जौहर देखने के लिए सारे देवगण आ रहे हैं। इनमें ऐरावत हाथी पर चढ़कर इन्द्र, सूर्य, चन्द्र चौंसठ योगिनियाँ, हंस वाहिनी सरस्वती, गरुड वाहन विष्णु, सिंह वाहिनी शक्ति, साँतों ऋषिवर, ब्रह्मादि के साथ वृषभारुढ़ रुद्र, प्रेम-पूर्वक वहाँ पर आये हैं तथा दिव्य चक्षुओं से हृदय-बेधी दृश्य देख रहे हैं। यहाँ अनुसांगिक रूप से अद्भुत रस का परिपाक भी हुआ है।

समस्त वीर मनोत्साह से लड़ते हुए एक दूसरे पर प्रहार करते एवं प्रहार सहन करते हैं और कान्हड़-दे तो दोनों ही हाथों से युद्ध कर रहा है। पद्मनाभ ने इस युद्ध कौशल का बडा सजीव चित्रण किया है । नंगी तलवारें इस तरह से चमक रही हैं मानों विद्युत दमक रही हो । दोनों ही ओर की कटक लड़ रही है, कट रही है और गिर रही है । यह युद्ध इस तरह से हो रहा है जैसा पहले कभी कुरुक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों के बीच घमासान युद्ध हुआ था। इस तरह से इस प्रबंध काव्य में वीर रस की अद्‌भुत मंदाकिनी सर्वत्र ही प्रवाहित है।

अद्‌भुत पराक्रमशाली युद्ध के इस रोमांचक दृश्य को समस्त विमानारूढ़ अप्सराएँ एवं स्वर्ग से समस्त देवता देख रहे हैं—

स्वर्गलोकथी साचूं मानि। सवि अपछरा चडी वीमानि।।
सवि देवता अंतरिष रही। दिव्य चक्ष विण दीसइ नहीं।।

कान्हस्वामी के मंदिर के ढ़हते ही कान्हड़-दे सहित समस्त राजपूतों ने वीरतापूर्वक आत्म-बलिदान देने की भावना से स्नान कर, पवित्र हो, देह पर गोपीचन्दन चर्चित कर कंठ में तुलसी की माला पहन, एक मन हो, मृत्यु का इस तरह से वरण करने लगे, मानो हृदय से अप्सराओं का वरण कर रहे हों—

दिव्य कुसम माला अणुसरई। राउत रंगि अपछरा वरई।।
वली मलिक चडीआ तिणि समइ। लेसिउं घाउ दिवस पांचमइ।।
कान्हस्वामिनइ देउलि, वली। करइ विणास वात सांभली।।
ततषिणि चडीउ राउल कान्ह। सवे राउते कर्‌या सनान।
गोपीचंदनि चरच्यां भाल। कंठि धरि तुलसीनी माल।।
एकमना राउत संचरइ। अंतरि थकी अपछरा वरइ।।
भिडइ रिणंगणि राउत भला। साहमा मलिक दीइ ऊथला।।

तलवारों से पारस्परिक घात-प्रतिघात हो रहे हैं। वीर गर्जना से सम्पूर्ण ब्रह्मांड गुँजायमान हो रहा है—

दीइ ऊथला साहमा सूंडि। वीरहाक वाजी ब्रह्मांडि।।
राउत नवि पाछा उसरइ। ऊपरि पुष्फवृष्टि सुर करइ।।
साहमा छई सपराणा मीर। सींगणि थका विछूटइ तीर।।
ऊघाडां षांडा थरहरइ वीज तणी परि झबका करइ।।

देव दैत्य जीणइ परि भिडइ। बिहुं कंटकना पायक पडइ ॥
आगइ कुरुखेत्रइ घाउ जिस्या। हीदूतुरक भिडइ रणि तिस्या ॥

रणक्षेत्र का ऐसा जीवन्त एवं ऐसा ओजस्वी वर्णन पद्मनाभ-सा वीर-गाथा का अमर महागायक ही कर सकता है।

:: वीभत्स रस ::

वीर रस के सहायक रस के रूप में पद्मनाभ ने वीभत्स रस का भी रुचिर चित्रण किया है। दोनों ही पक्षों की सेनाओं के वीरों के शव पड़े हैं। अपने स्वामी के लिए एक मन होकर योद्धाओं ने मरण को प्राप्त किया है। जहाँ एक ओर अप्सराएँ उनके सत्कार के लिए विमान पर चढकर उपस्थित हुई हैं, वहीं आमिष के लोभ में घूमते हुए गिद्ध चंचु-प्रहार से वीरों का मांस नोच रहे हैं—

अंतरि पक्ष प्रहारे भिडइ। वालइ दोट पंषीआ पडइ ॥
गृध्र सेन रुआछयां फिरइ। आमिष लोभि चंच वावरइ ॥

:: करुण रस ::

पद्मनाभ ने आंगिक रस के रूप में करुण रस का भी हृदय-द्रवित करने वाला चित्रण किया है। यह चित्रण अनेक अवसरो पर हुआ है। विशेष रूप से यह चित्रण रानियों के जौहर के समय चित्रित हुआ है। पद्मनाभ ने उस समय में छन्द को भी बदलकर करुण-रस के अनुरूप ही बना दिया है। सारी रानियां संपूर्ण रूप से शृंगार कर, चंदन की काठ पर चढने के लिए परिवार से मिल रही हैं। यह दृश्य अत्यन्त हृदय-विदारक है। भायल ने रहस्य उजागर कर दिया है। सरोवर का विनाश हो गया है। तालाब में गौ-मांस घोल दिये जाने के कारण पानी अपेय हो चुका है। असुरों की दुष्ट आशा पूरी हुई। परिवार में सभी की मृत्यु निश्चित है। ऐ प्रिय पुत्री, अब तुम्हें कौन वलामणी भेजेगा —

कुंयरि कोडाली बेटडी, वली मेलावउ कवण वलामणि ॥
भाईलि भेद देषाडीउ। सरोवरि करिउ विणास ॥
एह पाणी नवि पीजीइ। असुरां हवि पूगी आस ॥
समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ॥

इसी प्रकार वीरमदे का मृत सिर भी जब कुंवरी का मुँह देखना नहीं चाहता और वह मरा हुआ मस्तक उसकी ओर अपनी पीठ कर लेता है तो कुंवरी का स्वाभाविक विलाप-पूर्ण गीत-युक्त हृदयविदारक रुदन अत्यन्त करुण भाव उत्पन्न करता है। पूर्व जन्म के प्रेम का स्मरण कर गद्‌गद हो रोती हुई शाहजादी का हाथ आंसुओं से भीग गया है, उसका समस्त शृंगार अकारथ हो गया है। इस प्रकार के चित्र को चित्रित करते हुए पद्मनाभ पाठकों की आंखों में आंसू बहाने में सक्षम हुआ है। करुण-रस के जैसे हृदय-द्रावक चित्र कान्हड़-दे प्रबन्ध में उपलब्ध हैं, वैसे करुण चित्र ऐतिहासक काव्यों में अन्यत्र दुर्लभ हैं—

पूरब प्रेम संभारीउ , आंसूडे भीनउ हार जी।
गुण फीटी अवगुण थया, अम्ह कहि कारणि सिणगार जी॥
सगुण सलूणा राउल रुसूणं किस्यूं।

हूं ता प्रेमगहेलडी, तूं सोनिगिरउ चहूआण जी॥
सगुण सलूणा राउल रूसणूं किस्यूं।

तूं तां प्राणव माहरउ, हूं ताहरडी घरि नारि जी।
जनम एक अंतरि गयउ, सो नेहलु म वीसारि जी॥
सगुण सलूणा राउल रूसणूं किस्यूं।

हीयडलू घूणं गहिबरिउं, तुं सुणि न अम्हारा नाथ जी।
तुं अमरापुरि संचरयउ हुं मरणि न मेल्हुं साथ जी॥
सगुण सलूणा राउल रूसणूं किस्यूं।

काव्याभिव्यक्ति

पद्मनाभ की काव्यानुभूति के समान ही पद्मनाभ की काव्याभिव्यक्ति भी हृदय-हारिणी है। कवि ने विविध काव्यालंकारों का व्यापक प्रयोग किया है। यद्यपि कान्हड़-दे प्रबन्ध कोई अलंकार ग्रंथ नहीं है, तथापि कान्हड़-दे प्रबन्ध में अलंकारों की अद्‌भुत छटा विद्यमान है। संस्कृत के पारम्परिक अलंकारों के साथ-साथ राजस्थानी काव्य शास्त्र के अपने अलंकार भी हैं। पद्मनाभ के काव्य में प्रायः समस्त शब्दालंकार प्रमुखता से प्रयुक्त हुए हैं, जिन्हें पश्चवर्ती डिंगल कवियों ने तो अपने काव्य शास्त्र का अनिवार्य अंग ही मान लिया। इन अलंकारों में 'वयण-सगाई' एवं 'मोहरां-मेळ' सर्व प्रमुख हैं।

वयण सगाई

वयण सगाई काव्य भाषा की वह शब्द योजना है, जिसमें प्रत्येक चरण के अंतिम शब्द में उस वर्ण की उपस्थिति अपरिहार्य-मानी जाती है, जिस वर्ण से चरण का प्रारंभ हुआ हो। डिंगल के काव्य-शास्त्रकारों के अनुसार कवियों को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि यदि उसी वर्ण की आवृत्ति न हो सके तो उसके समकक्ष नियत दूसरे वर्णों का उपयोग कर ले। जैसे यदि कोई पंक्ति स्वर से प्रारम्भ हुई है, तो उस पंक्ति के अंतिम शब्द के प्रारंभ में यद्यपि स्वर ही आना चाहिए, किंतु यदि स्वर न आ सके तो य अथवा व आ जाए। इसके अतिरिक्त च के स्थान पर छ, ज के स्थान पर झ, ब के स्थान पर व, प के स्थान पर फ, म के स्थान पर ण, ग के स्थान पर घ, त के स्थान पर ट, ध के स्थान पर ढ एवं द के स्थान पर ड़ जैसे भिन्न अक्षरों के स्थानापन्न प्रयोग की स्वतन्त्रता है।

वयण सगाई अलंकर में एक छूट यह भी है कि यदि किसी भी चरण का पहला शब्द जिस वर्ण से प्रारंभ हुआ है, उसी चरण का अंतिम शब्द यदि उसी वर्ण, तत्सम वर्ण अथवा भिन्न वर्ण से प्रारम्भ न हो सके तो अंतिम शब्द में कहीं न कहीं तो उस वर्ण की अथवा उसके सम वर्ण की अथवा भिन्न वर्ण की आवृत्ति हो ही जाय।

इसी आधार पर वयण सगाई के अनेक भेद किये गये हैं, जिनमें मुख्यतः तीन भेद हैं —

अधिक वयण सगाई

चरण के प्रारंभ में प्रयुक्त शब्द के पहले वर्ण की आवृत्ति चरण के अंतिम शब्द के पहले वर्ण में हो। यथा—

बोलई पद्मनाभ कवि बंभ।

× × ×

समीयाण चडीउ सुरताण।

न्यून वयण सगाई

चरण के प्रारंभ में प्रयुक्त शब्द के पहले वर्ण के मित्र वर्णों की आवृत्ति चरण के अंतिम शब्द के पहले वर्ण में हो। यथा—

पातसाहि दीधउ फुरमाण।

× × ×

जाणे झळहळमल्ल झूझार।

मोहरा मेळ

मोहरामेळ अनुप्रास का ही एक रूप है। कहना चाहिए कि ये अन्त्यानुप्रास का विशेष रूप है। इसके भी तीन भेद हैं। ये भेद वर्णों की संख्या के अनुसार है। चार वर्णों के शब्दों का अन्त्यानुप्रास अधिक, तीन वर्णों का अन्त्यानुप्रास सम तथा दो वर्णों का अन्त्यानुपास न्यून मोहरामेळ कहलाता है। कान्हड़-दे प्रबन्ध में तीनों प्रकार का मोहरा मेळ उपलब्ध होता है।

अधिक मोहरा मेळ—

जहींइ सीह मलिक गढ़ ऊपरि
बंदीसाण रहाव्यउ
सेजवालसुं तहीनउ सगपण
जण हाथि मोकळाव्यउ।

सम मोहरा मेळ—

लोभ काजि पियारइ मरइ।
लोभइ कन्या विक्रय करइ।

न्यून मोहरा मेळ—

जालहुर गढ उत्तम ठाउ।
राउल कान्ह मालदे राउ।

पद्मनाभ के सम्पूर्ण काव्य में मोहरा मेळ का चमत्कार पूर्ण प्रयोग दृष्टिगत होता है।

पद्मनाभ की काव्य रचना से पूर्व डिंगल का अपना कोई अलंकार शास्त्र उपलब्ध होना ज्ञात नहीं होता। किन्तु पद्मनाभ के पश्चातवर्ती कवियों ने पद्मनाभ द्वारा प्रयुक्त राजस्थानी के इन अलंकारों का अपने काव्यों में हठपूर्वक निर्वहन किया है, इसी से ज्ञात होता है कि राजस्थानी काव्य शास्त्र पर पद्मनाभ का कितना व्यापक प्रभाव था।

कान्हड़-दे प्रबन्ध में डिंगल के अतिरिक्त पिंगल के भी अनेक अलंकार दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें अनुप्रास का प्रयोग तो लगभग प्रत्येक पंक्ति में है। पद्मनाभ के काव्य में प्रयुक्त कतिपय शब्दालंकार दृष्टव्य हैं—

अनुप्रास—

१. पाणी पंथा पूठि पल्हाण।

२. रुंड मुंड रडवडइ रिंणंगीय।

३. तरकस तीर वीर हथियारइ।

यमक—

१. घड़ी घड़ी घड़ीयाले सान।

पुनरुक्ति प्रकाश—

१. गमे गमे घण थाडा धाइ।

२. नितु-नितु आचरइ षट कर्म।

शब्दालंकारों की ही भाँति कान्हड़-दे प्रबन्ध में अनेक अर्थालंकारों को भी गुम्फित कर पद्मनाभ ने काव्य-सौष्ठव में श्रीवृद्धि की है। कतिपय अर्थालंकार दृष्टव्य हैं—

उपमा—

१. सूर ऊगंतइ दीवउ जिसउ।
साम्हा गुरड़ भुयंगम किसउ।

२. साम्हा सीह किसी गजमाळ
झंपइ द्रव जिम वर्षाकाळ।

उत्प्रेक्षा—

१. सहस अठ्यासी आगइ सर्‌या।
जाणे वली तेहजि अवतर्‌या।

२. सोलंकी राठउड़ प्रमार।
जाणे झळहळमल्ल झूझार।

रूपक—

नर निकुंभ गिरुआ गोहिल्ल।

निरंग रूपक—

वीज तणी परि लोह झबकइ।

उदाहरण—

पंष सहित बालइ निज अंग।

जउ दीवइ जइ पडइ पतंग।
जउ चाली जाइसि सुरताण।
सही कान्हड़-दे लेस्यई प्राण।

उपमा—

जउ जल हीणी माछली जी
जीवइ न ही जग मांहि ।
कंत विहूणी कामिनी जी
तिम तिम खीणी थाइ ।

यमक—

काव्य-गुण

पद्मनाभ के काव्य में माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीनों गुण यथा स्थान व्यवहृत हुए हैं। जहाँ कहीं शृंगारिक चित्रण की स्थिति उपस्थित हुई है, वहाँ पद्मनाभ की काव्य भाषा भी माधुर्य गुण से परिपूर्ण हुई है। ओजगुण तो संपूर्ण काव्य में सर्वत्र ही व्याप्त हैं, किन्तु नीति एवं धर्म की बात कहते समय पद्मनाभ की भाषा प्रसाद गुण से संपन्न दिखती है। इसी प्रकार गौडी, वैदर्भी एवं पांचाली तीनों ही काव्य-रीतियां कान्हड़-दे प्रबंध में दृष्टिगत होती हैं, किन्तु इसमें वैदर्भी रीति की तुलना में गौड़ी रीति का प्रयोग अधिक है। ओज प्रकाशक वर्णों की आडम्बर पूर्ण बंधावलि एवं परुषावृत्ति को गौडी रीति की पहचान माना जाता है। निश्चित रूप से यह रीति वीर, वीभत्स एवं रौद्र रस के अनुकूल है जिनका परिपाक पद्मनाभ ने अपने काव्य में व्यापक रूप से किया है।

:: शैली ::

पद्मनाभ की काव्य शैली अत्यधिक ओजस्वी एवं प्राणवान् है। कवि के लिए उदात्त भावों का महत्त्व सर्वोपरि है तथा उसकी शैली भावों को वैशिष्ट्य प्रदान करते हुए रचना को शोभन एवं व्यक्तित्व संपन्न बनाती है। उसकी शैली की सजावट से वशीभूत पाठक निरन्तर झूमता चलता है। रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक वाक्शक्ति उसकी अभिव्यंजना को निरन्तर रस-सिक्त बनाती है। उसके रंग-वैचित्र्य से प्रमुदित-प्रफुल्लित पाठक झूम-झूम उठता है। पद्मनाभ की काव्य शैली विवरणात्मक है। वह तथ्यों एवं विवेचनों का सुदीर्घ वर्णन करते हैं। प्रकृति-वर्णन में पद्मनाभ की कोई विशेष रुचि नहीं है किन्तु देशों, नगरों, घोड़ों की जातियों, पुरुषों की जातियों एवं वीरों के नामों की विस्तृत

परिगणना पद्मनाम की शैली का विशिष्ट गुण रहा है। कहीं-कहीं संशलिष्ट शैली का भी प्रयोग किया गया है । पद्मनाभ की शैली सामान्य रीति से तेजस्विनी, वेगवती, प्रौढ़, ओजस्विनी एवं प्रभावशाली है, लेकिन कोमल भाव लिए गीतों की रचना में इनकी शैली सुकुमार, गंभीर एवं ललित कोमला है ।

:: छन्द ::

पद्मनाभ ने बहुत अधिक छंदों का प्रयोग नहीं किया है । संपूर्ण काव्य ही प्रायः दोहा एवं चौपई छंद में गूंथा गया है, किन्तु युद्ध के वेगवान ओजस्वी वर्णन हेतु चौपाई या चौपाया से मिलते जुलते पवाड़ु छन्द का प्रयोग किया है । दोहे का उपयोग तो अत्यन्त मर्यादित है । प्रो० कन्हैयालाल बलदेवराम व्यास के अनुसार किसी महत्त्वपूर्ण विचार सूक्ति या सुभाषित को प्रस्तुत करने हेतु कवि संदर्भ से हटकर जब कुछ कहना चाहता है तब बहुधा दोहे छन्द का प्रयोग करता है । इन परिमित छन्दों के प्रयोग के अतिरिक्त रचना वैविध्य की दृष्टि से कवि ने भावों के परिपोषण हेतु विविध रागों के गीतों का प्रयोग भी किया है । इन गीतों की रागों में रामगिरि, धन्यासी (धुल) सिंघडउ, शिखरी, नूचीदेसाख, छाहुली एवं मालपसु सामेरी प्रमुख है । इन रागों के प्रयोग से पद्मनाभ का काव्य मंचित करने योग्य भी हो गया है । कान्हड़-दे प्रबंध में प्रयुक्त समस्त गीत प्रसंगानुरूप तो हैं ही रस परिपाक में भी पूर्ण समर्थ हैं ।

:: पद्मनाभ की भाषा ::

पद्मनाभ की भाषा को पुरातत्वाचार्य मुनि जिन विजय ने 'मारू गुर्जरी' भाषा कहा है । डा० कन्हैयालाल बलदेवरामव्यास के अनुसार 'अपभ्रंश के स्वरूप को त्यागती हुई मुग्धावबोध औक्तिक जैसी बाल व्याकरणों एवं वसंत विलासादि जैसे काव्यों में स्वयं के नूतन स्वरूप को सिद्ध करते हुए यह भाषा कान्हड़-दे प्रबंध में स्थिर हुई है ।'

प्राचीन राजस्थान और प्राचीन गुजरात सांस्कृतिक दृष्टि से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ था और आज भी राजस्थान का काफी हिस्सा सांस्कृतिक रूप से गुजरात से जुड़ा हुआ है । इसलिए उस समय की भाषा में प्राचीन गुजराती एवं प्राचीन राजस्थानी अभिन्न रूप से एक रही होगी ऐसी कल्पना की जा सकती है ।

पद्मनाभ की भाषा को मारू गुर्जरी भाषा कहना उचित ही प्रतीत है, किन्तु मेरे मत में इसे गुर्जरी प्रभावित मारू भाषा कहना अधिक उपयुक्त है। असल में यही वह भाषा है, जिसने आगे चलकर अपने स्वरूप को साहित्यिक मारू भाषा—कहना चाहिए कि डिंगल भाषा के रूप में सुस्थिर एवं सुप्रतिष्ठित किया। पद्य की भाषा में तो पद्मनाभ

की भाषा पर यद्यपि गुर्जरी प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है किन्तु गद्य भाषा में गुर्जरी प्रभाव छूटता-सा दिखता है। और उसके स्थान पर संस्कृत की सामासिक शब्दावली की तत्सम बहुला छटा बिखरी-बिखरी-सी दीखती है। गद्य भाषा का एक उदाहरण दृष्टव्य है—

"अट्टालीयां मालीयां टोटडे त्रिकलसां गगन चुंबित कोसीसां। सातषणा धवल गृह। रम्य प्रवेश। सूकडिया गवाक्ष। मलयागिरी जाल। कृष्णागिरी थांमली।"

राजस्थानी भाषा के उद्‌भव एवं विकास की दृष्टि से कान्हड़-दे प्रबंध का सविशेष महत्त्व है। पद्मनाभ की भाषा के मुख्य गुण हैं—ओजस्विता, नादात्मकता, युगानुकूलता, रसनुकूलता एवं संशिलिष्टता। ओजस्विता से पद्मनाभ का एक-एक शब्द छलकता सा जान पड़ता है। नादात्मकता की दृष्टि से पद्मनाभ ने प्रायः अनुकरण करने वाले व्यंजनों का प्रयोग किया है। इनमें स्वर मैत्री एवं व्यंजन मैत्री की मनमोहिनी छटा सर्वत्र ही दृष्टिगत होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वीर रस की कोई सरिता द्रुत गति से प्रवाहमान होती हुई अपने नादात्मक सौन्दर्य को निनादित रही हो।

पद्मनाभ ने युगानुकूल भाषा प्रयोग किया है इसलिए उसकी दृष्टि तत्कालीन प्रचलित शब्दों को यथावत रूप से रखने की ओर अधिक गयी है। राज दरबारों एवं सामाजिक कार्यो से संबंधित कार्य व्यापार का चित्रण करते समय पद्मनाभ की भाषा की युगानुकूलता चकित करने वाली प्रतीत होती है। पद्मनाभ राज कवि था, अतएव राजकुलों की मर्यादित शिष्ट वाणी एवं वाक्चातुर्य उसके काव्य में सर्वत्र ही पूरे वैभव के साथ दृष्टिगत होता है। राजनय की शब्दावली भी सम्पूर्ण गरिमा के साथ उसके काव्य में विद्यमान है। इसी कारण उसमें यत्र-तत्र अरबी-फारसी भाषा के विदेशी शब्द भी दृष्टिपथ में आते हैं। इस शब्दों में बंदई (बंदा, सेवक, सुरतांण (सुल्तान), साणा, फुरमाणु, तसलीम, मि, तेरा, दरि-दरि, मावूरति, मुहिम, जुजुआ (जुदा-जुदा) मीर, खास, खवास, सैद (सैयद) मुहल, महल, हराण (हैरान), मुकाम एवं गुर्ज जैसे शब्द दृष्टव्य हैं।

:: रसानुकूलता ::

पद्मनाभ की भाषा में रसानुकूलता की विदग्धता दृष्टव्य है। उत्साह एवं उमंग से परिपूर्ण भाषा के प्रत्येक शब्द से तेज एवं पौरुष छलकता हुआ दृष्टिगत होता है। पद्मनाभ की भाषा सर्वत्र ही भावानुगामिनी तो है ही, रसानुगामिनी भी है।

युद्ध के एवं सैन्य संचरण के प्रसंगों में उनकी भाषा में प्रायः घोष बाहुल्य शब्दावली एवं ओज व्यंजक वर्णों से विभूषित परूषावृत्ति का आधिक्य है—

लोहडां तणी काटकडि ऊडि
यंत्रि पुहतउ सूर।

समरंगणि नीसांण धूसूक्यां
रण काहल रणतूर।

किन्तु जहाँ पद्मनाभ ने करुणा के वातावरण की सृष्टि करनी चाही है, वहाँ प्रायः माधुर्य व्यंजक अघोष कोमल वर्णों का प्रयोग किया है—

कुयरि कोडाली बेटडी
वली मेलावउ कवण वलामणि।

:: लाक्षणिकता ::

पद्मनाभ ने अपने काव्य की भाषा में व्यंजनापूर्ण लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त रूप से किया है। लाक्षणिकता का प्रयोग करते हुए उनकी भाषा लोकोक्तियों एवं मुहावरों से परिपूर्ण हो गयी है। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के जीवन्त प्रयोग से भावों की सौन्दर्य-वृद्धि में चमत्कारिक प्रभाव आ गया है। पद्मनाभ की भाषा में लाक्षणिकता से भरे कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं —

नीर पवंन पावक तणी
झड नवि झालइ तोय।

× × ×

नाम हुसई नव षंडि।

× × ×

दाणां पांच लहइ नहि षावा।

× × ×

वइरी दीधउं पूरुं।

× × ×

दिवस बिहूँ माहि आवी।

× × ×

एक न मानइ सार।

× × ×

कायर पडइ पराण।

× × ×

काने पडीया ढाक ।

× × ×

मोतीयडे पूरु चूक ।

× × ×

—जैसे प्रयोग वाच्यार्थ से हटकर विशिष्ट अर्थ प्रस्तुत करते हुए कवि की वाग्विदग्धता से परिचित करवाते हैं ।

:: चित्रात्मकता ::

किसी घटना या स्थिति का हूबहू चित्रण करते समय पद्मनाभ ने संश्लिष्ट शैली की चित्रात्मक भाषा प्रयुक्त की है । ऐसी भाषा को सुनकर लगता है कि घटित होती हुई स्थितियाँ मानो प्रत्यक्ष रूप से सम्मुख ही प्रकट हो रही हों । इनमें,—

भरहर धरणी कांपी

आव्या चउपट घाइ

डमडम डूंगर डोलइ

बगजां ढोल नीसाण धसूंकइ

साहय कुण मांडइ

सेन समुद्र उलटीयां

जैसे वांक्याशों के प्रयोग से आंतक, युद्ध की त्वरा, सेना की प्रचुरता, गतिशीलता, युद्ध का विकट घोष एवं दुर्निवार्य सैन्य-प्रवाह के मूर्त चित्र समुपस्थित होते हैं । दूसरी ओर

नवि मानइ आण

उग्या सूर तणउ

बिरद आपणा बोलइ

जैसे चित्रात्मकता के प्रत्यक्षीकरण एवं नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करने वाले चारु-प्रयोग सहृदय पाठकों का मन मोह लेते हैं । इस प्रकार काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से पद्मनाभ परिपक्व रस-सिद्ध कवि सिद्ध होते हैं ।

प्रत्येक कवि का अपना एक विशिष्ट जीवन दर्शन होता है। उसके अपने कुछ विनिश्चित आदर्श, कुछ महनीय मूल्य होते हैं। ये आदर्श एवं मूल्य कवि की विशिष्टता का निर्धारण करते हैं। कवि का जीवन एवं उसका काव्य इन विशिष्टताओं का प्रतिपादन

होता है।

जीवन की ही भाँति काव्य में भी परिपूर्णता की प्राप्ति के हेतु वास्तविकता के साथ स्वप्न की स्थिति होती है। काव्य के माध्यम से कभी-कभी ऐसे स्वप्न भी प्रस्तुत किये जाते हैं, जो यथार्थ नहीं, आकांक्षित यथार्थ होते हैं। धर्म के बहाने राष्ट्रीय गौरव का उन्मेष, बाह्य आक्रमणकारियों के विरुद्ध व्यापक बन्धुत्व-जागृति एवं शासक और समाज में समान आत्म-गौरव का स्पन्दन पद्मनाभ के काव्य को अनिंद्य एवं अतुलनीय विशिष्टता प्रदान करता है।

पद्मनाभ के काव्य में संगति-स्थापन की अटूट शृंखला है। अपने सांस्कृतिक वैशिष्टय, राष्ट्र-गौरव के प्रति भावुकतापूर्ण आग्रह, लोक संस्कृति के अक्षय भंडार से काव्य तत्वों का चयन तथा अटूट एवं अपराजेय संकल्प की संधारणा ने कान्हड़-दे प्रबन्ध को लोकमंगल का काव्य बनाया है।

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त गर्व होता है कि भले ही कान्हड़-दे प्रबन्ध कवि के आश्रयदाता राजा अखैसिंह के राजदरबार में रचा गया हो, किन्तु भावनाओं एवं मूल्यों के लेखे कान्हड़-दे प्रबन्ध अपने आश्रयदाता नृपति के राजदरबार की चाहरदीवारी का चाटुकारिता-पूर्ण प्रपन्च काव्य नहीं वरंच यह जन-मन को उद्वेलित करने वाला महनीय लोक काव्य ही है। कवि के लिए मूल्यवान मणि मौक्तिक जड़ित आभरणों से भूषित, सुवासित अंग-अंग-रंग-चर्चित नारी के कटाक्ष कौतुक की मादक कल्पना पद्मनाभ की कविता का अभिप्रेय नहीं रहा, अपितु राष्ट्रीय संघर्ष हेतु उसने एक ऐसी नायिका का सृजन किया जिसके हृदय में अटूट भाव से ऐसी स्व-देशभक्ति विराजमान थी कि अपने प्राण-प्रिय पति की अपने ही हाथों से हत्या कर लेने में उसे लेश मात्र भी क्लेश नहीं हुआ।

इस काव्य के बहाने पद्मनाभ ने उन समस्त राष्ट्रीय आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, आदर्शों एवं आशाओं का हृत्कम्प उपस्थित किया, राष्ट्रीय संघर्ष की स्थापना के लिए जिसकी आवश्यकता अपरिहार्य थी। एतदर्थ कान्हड़-दे प्रबन्ध मात्र एक काव्य ही नहीं, एक सांस्कृतिक आंदोलन का प्राण बिन्दु भी है।

अध्याय छः

कान्हड़-दे प्रबंध का ऐतिहासिक महत्त्व

अल्लाउद्दीन के काल का विवरण प्रकट करने वाली ऐसी महत्त्वपूर्ण कृतियां बहुत कम हैं जिन्हें विश्वसनीय माना जा सके। निःसंदेह जिन कुछ कृतियों में वर्णित लेखों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है उनमें देवलरानी, ख्वाजाइन-उल फतह, विविध तीर्थ-कल्प, तारीख-ए-फिरोजशाही, तारीख-ए-फरिश्ता, हम्मीर-महाकाव्य, हम्मीरायण एवं कान्हड़-दे प्रबंध प्रमुख हैं। इन कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है—

(1) **तारीख-ए-फरिश्ता**

फरिश्ता का यह ग्रंथ 16वीं शताब्दी में रचित फारसी भाषा का ग्रंन्थ है जिसे जहांगीर के शासन काल में पूर्ण किया गया था। मूलतः यह दक्षिण भारत का इतिहास था, लेकिन इसमें प्रासंगिकरूप से उत्तर भारत की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन भी प्राप्त होता है। फरिश्ता ने कान्हड़-दे की मृत्यु के दो शताब्दी बाद अपनी तारीख लिखी थी। उसका दृष्टिकोण एकपक्षीय अर्थात् विशुद्ध मुस्लिम गौरव का दृष्टिकोण था। प्रायः इतिहासकार फरिश्ता द्वारा प्रदत्त वर्णनों को सही नहीं मानते। तारीख-ए-फरिश्ता के अनुसार अल्लाउद्दीन खलजी के सेनानायक एनुलमुल्क मुल्तानी ने कान्हड़-दे के पुत्र वीरमदे को अल्लाउद्दीन के दरबार में जाने के लिए बहला-फुसलाकर तैयार कर लिया। दुर्भाग्यवश, चौहानों का इतिहास लिखने वाले आधुनिक ख्यातिप्राप्त इतिहासकारों ने भी अपनी पुस्तकों में प्रमाण के रूप में फरिश्ता द्वारा दिये गये विवरणों का प्रयोग विस्तृत रूप से एवं निस्संकोच भाव से करने की भूल की है एवं अल्लाउद्दीन के दरबार में वीरमदेव की उपस्थिति को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया है, जो युक्ति-युक्त नहीं लगता।

(2) **ख्वाजाइन-उल फतह व देवलरानी**

इन पुस्तकों को अमीर खुसरो ने लिखा है। खुसरो स्वयं अल्लाउद्दीन की सेनाओं के साथ विभिन्न अभियानों में तो गया ही था, उसे अल्लाउद्दीन का संरक्षण भी प्राप्त

था अतः उसने अपनी पुस्तक में ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन सर्वथा सच्चाई से न करके अल्लाउद्दीन की प्रसन्नता के लिए ही किया है। प्रो० हबीब ने अपने एक अनुसंधान लेख में जो 'ख्वाजाइन-उल फतह' की आलोचना में लिखा गया था, स्पष्टतः स्वीकार किया है कि अमीर खुसरो की सूचनाओं को आधार मानकर कान्हड़-दे से संबंधित इतिहास एवं तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं पर संशय नहीं किया जा सकता।

(3) **मुहणोत नैणसी री ख्यात**

मुहणोत नैणसी का जन्म 16 वीं शताब्दी के अंतिम चरण में जोधपुर में हुआ था। वह जोधपुर के महाराजा का दीवान होने के साथ-साथ महाराज के सेना नायक होने का कर्तव्य भी निभाया करता था। उसने अपनी ख्यात को लोकमुख से सुनी परंपरागत सूचनाओं के आधार पर लिखा है। नैणसी द्वारा लिखित ख्यात में राजस्थान के चौहान शासकों का प्रारंभिक इतिहास भी मिलता है। कान्हड़-दे से संबंधित इतिहास लिखते समय डा० दशरथ शर्मा ने "नैणसी" के निर्णयों का अंतिम निर्णयों के रूप में स्वीकार किया है। डा० दशरथ शर्मा ने इस ख्यात के उस हिन्दी अनुवाद का प्रयोग किया था जिसे श्री राम नारायण दूगड ने तैयार किया था और जो काशी नगरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ था। नैणसी की मूल ख्यात तथा इसके हिन्दी अनुवाद में कहीं-कहीं अन्तर पाया जाता है। नैणसी की ख्यात का मुख्य आधार लोक-मुख है। दूगड़ जी कृत नैणसी की ख्यात का हिन्दी अनुवाद भी न तो सर्वथा निर्विवाद है, न ही पूर्णतः विश्वास के योग्य ही है।

(4) **शिलालेख**

कान्हड़-दे के शासन की कुछ जानकारी निम्नांकित शिलालेखों से भी ज्ञात होती है—

(अ) मकराना स्थित शिलालेख—इससे पता चलता है कि यह यहाँ पर 1297 ई· में अल्लाउद्दीन की सेनाओं को कान्हड़-दे ने परास्त किया था।

(ब) जालोर प्रशस्ति—पत्थर पर लिखी गई प्रशंसा का संग्रह है जिसमें कान्हड़-दे के शासन व विजयों का उल्लेख किया गया है।

(5) **कान्हड़-दे प्रबंध**

पद्मनाभ द्वारा लिखित इस प्रबंध-काव्य की रचना **कान्हड़-दे** के वंशज अखयराज

के शासनकाल में 1455 ई० के लगभग हुई थी। इस काव्य-ग्रन्थ में कान्हड़-दे की उपलब्धियों को यद्यपि काव्यात्मक अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से वर्णित किया है तथापि ऐतिहासिक घटनाओं की वास्तविकता निर्विवाद है। पद्मनाभ के प्रस्तुतिकरण का दृष्टिकोण मूलतः राजपूत दृष्टिकोण था। 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज' के लेखक डा० दशरथ शर्मा ने इस काव्य ग्रन्थ को तत्कालीन ऐतिहासिक साक्ष्य का आधारभूत एवं प्रमुख साधन माना है। संभवतः डा· दशरथ शर्मा के सुझाव पर तथा इतिहास एवं पुरातत्व के प्रतिष्ठित विद्वान् पद्मश्री मुनि जिन विजय जी के अनुरोध पर सन् 1953 ईस्वी में राजस्थान की राज्य सरकार ने इस काव्य को श्री के०बी० व्यास से संपादित करवा कर प्रकाशित करवाया था। इस ग्रंथ की सूचनाओं को यद्यपि इतिहासकारों ने सतर्कता के साथ प्रयोग में लेने की सलाह दी है, तथापि भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में कान्हड़-दे प्रबंध का विशिष्टतर स्थान है, यह नहीं भूलना चाहिए।

कान्हड़-दे प्रबंध इतिहास के रूप भारतीय साक्ष्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार ग्रंथ है। भारतीय दृष्टि से एवं भारतीय साक्ष्यों के आधार पर महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अन्वेषण करने वाले सुप्रसिद्ध विद्वान एवं प्रारंभिक चौहान साम्राज्य का नवीन दृष्टि से उपोद्घात करने वाले विद्वान् डा० दशरथ शर्मा ने अपने अन्वेषण में कान्हड़-दे प्रबंध में वर्णित विविध ऐतिहासिक साक्ष्यों को अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्वीकार किया है। राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण यह वीर काव्य अद्भुत रूप से जालोर का तत्कालीन इतिहास भी है। इसमें वर्णित समस्त घटनाओं का पौर्वात्य अथच पाश्चात्य विद्वानों ने एक स्वर से समर्थन किया है।

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त ऐसी जानकारी के अनुसार जिसे कान्हड़-दे प्रबन्ध भी सत्यापित करता है, जालोर के राजा कान्हड़-दे (1339-1362 विक्रमी) से संबंधित इतिहास निम्नानुसार है—

अल्लाउद्दीन ने 1298 ई में गुजरात को ध्वस्त कर सोमनाथ के मंदिर को नष्ट करने का निश्चय किया। कान्हड़-दे प्रबन्ध के अनुसार गुजरात के राजा कर्ण दे बघेला के मंत्री माधव मेहता ने अल्लाउद्दीन के समक्ष उपस्थित होकर उसे गुजरात पर आक्रमण करने की प्रार्थना की थी। डा० दशरथ शर्मा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया है कि गुजरात पर आक्रमण करने के लिए अल्लाउद्दीन को माधव मेहता ने निमंत्रित किया था, जैसा कि कान्हड़-दे प्रबन्ध में वर्णित है। माधव मेहता के इस आमंत्रण को यद्यपि बरनी ने भी स्वीकार नहीं किया है, किन्तु विक्रम की चौहदवीं शताब्दी में रचित 'मेरूतुंग' की सुप्रसिद्ध रचना 'विचार श्रेणी' एवं इसके ही समकालीन एक अन्य लेखक 'जिनप्रभसूरि' के प्रसिद्ध ग्रंथ 'विविध कल्प तीर्थ' में माधव द्वारा अल्लाउद्दीन को आक्रमण करने के लिए प्रेरित करने का स्पष्ट उल्लेख है। 'विचार श्रेणी' में—"यवना माधवनागर विप्रेणानीताः" एवं विविध कल्पतीर्थ में—"अलावदुणसुरताणस्स कणिठाठो भाया उलुखान नागाधिज्ज ढिल्लोपुराओ मंतिहवपेरिओ गुज्जरधरं पठ्ठिओं" जैसे वाक्यांशों से

यह सिद्ध होता है कि अल्लाउद्दीन की गुजरात-विजय की इच्छा को पूरा करने के लिए माधव नामक ब्राह्मण भी निमित्त रहा होगा।

गुजरात पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान हेतु अल्लाउद्दीन ने अपनी सेना के लिए मारवाड़ के रास्ते से मार्ग चाहा और अल्लाउद्दीन ने इस सहयोग के बदले में कान्हड़-दे को भौतिक संपदाएँ देनी चाहीं, लेकिन कान्हड़-दे लिए स्व-धर्म भौतिक संपदाओं से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण था, अतएव उसने अल्लाउद्दीन की सेना को जालोर होकर प्रयाण करने में अपनी सहमति नहीं दी। तत्कालीन परिस्थितियों में अल्लाउद्दीन जालोर के विरुद्ध प्रतिकार लेने में सक्षम नहीं था, अतः उसने उलुगखां और नुसरतखां के सेनापतित्व में अपनी सेनाओं को मेवाड़ के रास्ते से प्रयाण करने के निर्देश दिये। मेवाड़ के राजा रावल समरसिंह ने अल्लाउद्दीन की सेना को गुजरात में प्रवेश करने का रास्ता दिया। माधव मेहता के बताये रास्ते से सेनाएँ गुजरात पहुँची एवं गुजरात को लूटा, साथ ही काठियावाड़ को भी जीता। इस तथ्य का उल्लेख इलियट एण्ड डाउसन ने "हिस्ट्री आफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ऑन हिस्टोरियन्स" के खंड 2 (1871) पृष्ठ 183 पर किया है। सोमनाथ के नष्ट होने पर गुजरात का राजा कर्णदेव बाघेला परास्त होकर भाग गया। इस तथ्य को इलियट एण्ड डाउसन के अतिरिक्त मुस्लिम इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है। कान्हड़-दे प्रबंध से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

कान्हड़-दे प्रबन्ध के अनुसार उलुग खां ने गुजरात एवं काठियावाड़ के जिन नगरों को ध्वस्त किया, उनमें मोडासा, चरोत्तर, बावन खेड़ा, धाणधर, धंधोल, आसाउल, धूलका, सूरत, रानेर, चांपानेर, देवपाटन, पाद्रि, जूनागढ़, गिरनार, कच्छ, भुज, काथ, गेहड़ी एवं पारकर का स्पष्टतः उल्लेख है। गुजरात एवं काठियावाड़ को परास्त करने के पश्चात् उलुगखां ने मेवाड के रास्ते से लौटना व्यर्थ समझा एवं कान्हड़-दे को दंडित करने के उद्देश्य से सुल्तान से बिना पूर्व स्वीकृति लिए और उसे बिना बताये ही अपनी सेनाओं को जालौर के रास्ते से ले चला। कान्हड़-दे के समक्ष युद्ध करने के अतिरिक्त अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने का और कोई विकल्प था ही नहीं, साथ ही, कान्हड़-दे के लिए युद्ध करने का यह समय अनुपयुक्त भी नहीं था, क्योंकि लूट के बंटवारे को लेकर नव-मुस्लिमों के हृदय में विद्रोह की आग जल चुकी थी। इस विद्रोह का मुख्य कारण यह था कि उलुग खां लूट का पंचमांश अत्यधिक कठोरता से वसूल करता था। पंचमांश की वसूली के लिए नव-मुस्लिमों को दंडित एवं प्रताडित तो किया ही जाता था, उन्हें बुरी तरह से पीटा, रौंदा और कुचला भी जाता था। उलुगखाँ के दण्ड की यह शैली अत्यन्त जघन्य एवं घिनौनी थी। उसके सैनिकों ने नव-मुस्लिमों से अनाधिकृत रूप से बहुत-सा सोना, जवाहरात एवं अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ छीन ली। उलुगखाँ के इस व्यवहार से नव-मुस्लिम अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। डा· दशरथ शर्मा के अनुसार वे न तो पारंपरिक वफादारी तथा न ही पारंपरिक धर्मोन्माद से दिल्ली शासन के प्रति प्रतिबद्ध थे। यद्यपि नव-मुस्लिम

भी स्वार्थी तो थे, लेकिन खलजी और उनके सिपाहियों जैसे दानव नहीं थे। अल्लाउद्दीन की सेना के आपसी कलह ने कान्हड़-दे को युद्ध करने के लिए और अधिक उत्प्रेरित किया। जालोर से लगभग 8 मील दूर संकराणा, जिसे आजकल संकराणा कहते हैं, के मैदान में अल्लाउद्दीन की सेनाओं के पहुँचने पर कान्हड़-दे के अमात्य जयत देवडा ने उलुग खाँ को उसके आपत्तिजनक प्रवेश के लिए अपने राजा के असंतोष का संदेश दिया। उलुग खाँ ने अपनी शक्ति संपन्नता के दर्प में जयत देवडा को अनर्गल एवं असंबद्ध उत्तर देकर लौटा दिया। लौटते समय जयत देवडा नव-मुस्लिम के नेता मुहम्मद शाह तथा उसके भाई से भी मिला। दो दिन के भीतर ही कान्हड़-दे द्वारा योजनाबद्ध रीति से उलुग खाँ पर आक्रमण करने पर असंतुष्ट एवं क्रुद्ध नव-मुस्लिमों ने उलुग खां से विद्रोह कर दिया। "केंब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया" में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि संकराणा की इस लड़ाई में उलुग खाँ का भाई मलिक एजुद्दीन तथा अल्लाउद्दीन का एक भतीजा मारा गया था और उलुग खाँ भी बहुत मुश्किल से अपना जीवन बचा सका था। अल्लाउद्दीन के परास्त सेनापतियों ने और वैसे ही विद्रोहियों ने भी अपने जीवन की रक्षा में लिए राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर शरण ली।

इतिहासकार संकराणा (सांकरणा) के इस युद्ध में उलुग खां की हार का कारण कान्हड़-दे की विजय के स्थान पर नव-मुस्लिमों के विद्रोह को बताते हैं। परन्तु यहाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अशान्ति की यह आग जालोर में ही क्यों भडकी? नव-मुस्लिमों ने यह विद्रोह जालोर में ही क्यों किया? इससे पूर्व कहीं भी उन्होंने इस विद्रोह को क्यों नहीं किया? स्वाभाविक रूप से नव-मुस्लिम तथा दूसरे सैनिक भी यही चाहते थे कि वे सोमनाथ की लूट से प्राप्त बहुमूल्य माल को पहले अपने घर सौंप दें तथा बाद ही किसी अन्य प्रदेश पर आक्रमण किया जाय। उनकी इस चाह का कारण यह था कि उन्हें विश्वास नहीं था कि वे कान्हड़-दे जैसे पराक्रमी शासक को सरलता से जीत पाएंगे। लेकिन, विजयोन्माद में उन्मत्त उलुग खां चाहता था कि लगे हाथ राह में ही जालौर पर भी अधिकार कर लिया जाय। वस्तुतः जालोर पर आक्रमण को लेकर उलुग खाँ और मोहम्मदशाह में गहरा मतभेद था। इस मतभेद के कारण भी सरलता ही खोजे जा सकते हैं। नव-मुस्लिमों को भय था कि जालौर पर आक्रमण करने से कहीं गुजरात की लूट के माल से भी हाथ न धोना पड़े। कान्हड़-दे द्वारा रास्ते में ही लुटे जाकर वे अपने खून से कमाये इस धन से कहीं वंचित न हो जाएं। इसलिए उन्होंने उलुग खां को जालोर पर आक्रमण न कर सीधे दिल्ली जाने की सलाह दी होगी, किन्तु विजय-दर्प से उन्मत्त उलुग खां ने अपने सेनापतियों की इस नेक एवं व्यावहारिक सलाह को नहीं माना होगा। भारतीय इतिहासकारों द्वारा जालोर में नव-मुस्लिम विद्रोह होने का यही अनुमान लगाया जाता है। जालोर में ही अल्लाउद्दीन की सेना में विद्रोह होने का उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। किन्तु पद्मनाभ का यह कहना अधिक सही प्रतीत होता है कि अपने प्रचण्ड

प्रत्याक्रमण द्वारा कान्हड़-दे ने उलुग खाँ की सेना को परास्त कर दिया और उसका समस्त धन, शस्त्र एवं घोड़े-हाथी छीन लिये। गुजरात की लूट का बहुत-सा बहुमूल्य माल भी कान्हड़-दे के हाथ लगा, किन्तु कान्हड़-दे द्वारा जिस धन को सर्वाधिक मूल्यवान समझा गया, वह था सहस्रों हिंदू कैदियों को बन्धन मुक्त करवाना और सोमनाथ के लिंग को दिल्ली ले जाने से बचाना। कान्हड़-दे ने प्रभाष पट्टन से प्राप्त खंडित शिवलिंग के पाँच टुकड़े करवाये। उनमें से एक खंड प्रभाष पट्टन को लौटाकर उसी मन्दिर में पुनः प्रतिष्ठित करवाया गया, दूसरा खंड वागड, तीसरा आबू, चौथा जालोर और पाँचवा खंड उसने अपने बाग में मंदिर बनवाकर स्थापित किया। पद्मनाभ की तथा अन्य हिंदू इतिहासकारों की दृष्टि में भी कान्हड़-दे का शिवलिंग की मुक्ति का यह कार्य महानतम कार्य था।

इस प्रबन्ध में वर्णित माहिमशाह वही लोक प्रसिद्ध मोहम्मद शाह है, जिसने इस विद्रोह के पश्चात् हम्मीर की शरण ली थी तथा उसे शरण देने के कारण अल्लाउद्दीन ने रणथम्भौर पर आक्रमण करने का बहाना बनाया था।

जालोर की बलवत्ता सिद्ध करने के लिये यह एक प्रमाण ही पर्याप्त है कि उलुग खाँ की हार के इस अपमान का बदला लेने के लिए अल्लाउद्दीन लगभग पांच वर्ष तक कोई कार्यवाही नहीं कर सका। लेकिन, ईस्वी सन् 1301 में रणथम्भौर, जहाँ मोहम्मद शाह ने शरण ली थी और जहाँ का शासक वीर हम्मीर अत्यन्त पराक्रम के बावजूद अपने ही सेनापतियों के धोखे के कारण परास्त हो चुका था, के विनाश के पश्चात् भी अल्लाउद्दीन ने पहले उज्जैन, आबू, धार एवं चंदेरी के किलों को जीता। स्वाभाविक रूप से ये किले उस समय जालोर के किले जितने दुर्गम एवं शक्तिशाली नहीं रहे होंगे। उन किलों को जीतने के पश्चात् 1305 ईस्वी में अल्लाउद्दीन ने एक बार पुनः जालोर को जीतने का निश्चय किया। संभवतः उस समय तक सामंतसिंह की मृत्यु हो चुकी थी और कान्हड़-दे को युद्ध के लिए एक बार पुनः सोचना था। खलजी के वीर और विद्वान् सेनापति इमामुलमुल्क मुल्तानी के समझाने पर कान्हड़-दे अल्लाउद्धीन के साथ सम्मानजनक संधि करने हेतु सहमत हो गया होगा और उसने अपनी सार्वभौमिकता को बरकरार रखते हुए अपने पड़ोसियों को मदद नहीं की होगी। किन्तु शीघ्र ही कान्हड़-दे को यह सन्देह हो गया होगा कि सिकन्दर के समान महात्वकांक्षी अल्लाउद्दीन के साथ निरंतर संधि रखना लगभग असंभव होगा, क्योंकि अल्लाउद्दीन तो पूरे भारत में हिन्दुत्व विहीन एकछत्र शासन चाहता था। वह हर समय अपने जी-हुजूरियों से घिरा रहता था। चौहानों को गुलामी एवं हजूरी का अभ्यास नहीं था। हिन्दुत्व का अभिमानी वह वीर बहुत समय तक अल्लाउद्दीन के साथ समझौता नहीं रख सका। एक मजलिस में जब अल्लाउद्दीन द्वारा किसी भी हिन्दू राजा से युद्ध करने की चुनौती दी गयी तो कान्हड़-दे ने अपने राजपूती शौर्य की परंपरा में इस चुनौती को स्वीकार किया होगा, क्योंकि वह जानता था कि वीर

लोगों को कैसे मरना चाहिए। अल्लाउद्दीन के साथ समझौते की इतिहासकारों की इस मान्यता को यद्यपि पद्मनाभ स्वीकार नहीं करता तथापि वह इस तथ्य को तो स्वीकार करता ही है कि सिवाना पर आक्रमण के समय कान्हड़-दे ने अल्लाउद्दीन के विरुद्ध सातल-दे की सहायता नहीं की।

इस प्रकार अल्लाउद्दीन और कान्हड़-दे के मध्य संघर्ष का द्वितीय दौर प्रारंभ हुआ। खलजी ने पहले सिवाना पर आक्रमण किया जो एक मजबूत किला था तथा जो जालौर के लगभग तीस किलोमीटर दूर स्थित है। इस तथ्य को अमीरखुंसरो ने अपने ग्रंथ तारीख-ए-इलाही में भी स्वीकार किया है कि ईस्वी सन् 1308 में सुल्तान अल्लाउद्दीन ने सईवाणा (सिवाना) के गढ़ पर चढ़ाई की। इलियट एण्ड डाउसन के अनुसार यह बहुत मजबूत किला था जो काफी ऊँचे पहाड़ पर आया हुआ था और जिसके समीप चारों ओर घना जंगल था। किले का रक्षक सातलदे कान्हड़-दे का भतीजा था जो एक महान योद्धा था। इसने जालौर की प्रभुसत्ता बढ़ाने के लिए अनेक युद्ध लड़े थे। खलजी का इससे सबसे पहल मुकाबला मंडोर में हुआ जहाँ उसने आगे बढ़ आई मुस्लिम सेना को भारी क्षति पहुंचायी थी। तत्पश्चात् उसने अपने युद्ध-कौशल एवं कान्हड़-दे की सेनाओं की सहायता से खलजी को सिवाने की भूमि से खदेड दिया। डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार सातलदे एवं कान्हड़-दे की दो ज्वालाओं के बीच खलजी को न केवल युद्ध सामग्री की क्षति उठानी पड़ी, अपितु उसे नाहर मलिक तथा खांडाधर भोज जैसे कुशल सेनापतियों की भी बलि देनी पड़ी।

मुस्लिम सेना के लिए यह बलि कम अपमानजनक बात नहीं थी, लेकिन अल्लाउद्दीन की प्रबल इच्छा के कारण मास दर मास एवं वर्ष दर वर्ष जनहानि एवं सैन्य-सामग्री की अपार क्षति सहते हुए भी मुस्लिम सेनाएं किले को घेरे पड़ी रहीं। इस सेना ने लगभग 5-6 वर्ष तक सातल-दे पर विजय पाने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु सातल-दे अपराजित ही रहा। अंत में, क्रेंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया के अनुसार 1310 में अल्लाउद्दीन ने स्वयं एक विशाल रणवाहिनी के साथ सईवाणा (सिवाना) के किले पर आक्रमण किया। सातल-दे ने अपूर्व शौर्य एवं साहस के साथ सामना किया। उसने खलजी की सेना पर पत्थर के बम बरसाये। जब भी खलजी की फौजों ने किले की दीवारों को क्षति पहुँचाने का प्रयत्न किया, उसने भीषण प्रत्याक्रमण से उन्हें विफल कर दिया। जब खलजी के समस्त सेनापतियों ने सिवाने को जीतने की आशा छोड़ दी, तब अत्यन्त कुपित होकर अल्लाउद्दीन ने स्वयं सिवाने के किले पर धावा बोला। उसने एक पेशिब बनवाया तथा भायल नाम के किसी विश्वासघाती हिन्दू की सहायता से किले की सर्वोच्च चोटी पर चढ़कर सिवाना के मुख्य तालाब में गौ-मांस एवं गौ-रक्त डलवा दिया। इससे पेयजल का मुख्य स्रोत नष्ट-भ्रष्ट हो गया। लोगों के समक्ष जल के बिना मरने के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं बचा। ऐसी कठिन परिस्थितियों में राजपूत रमणियों ने जौहर और सिवाना के

वीरों ने केसरिया पहनकर अपने आत्म सम्मान की रक्षा की। अल्लाउद्दीन के आश्रित मनसबदार और उसके अत्यधिक प्रशंसक कवि अमीर खुसरो को भी अपने ग्रंथ 'ख्वजाइनुल फतह' में लिखना पड़ा —" सातल-दे के सैनिक वीर एवं शक्तिसंपन्न थे तथा सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी वे पीठ नहीं दिखाते थे।"

इस प्रकार समस्त छल-बल का प्रयोग करके अल्लाउद्दीन ने सिवाने के किले पर अधिकार कर लिया। इस षडयंत्रपूर्ण सफलता में कमालुद्दीन गुर्ग की भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही और अल्लाउद्दीन ने विजय हेतु अपनाये गये ऐसे घिनौने कार्य के लिए भी उसकी प्रशंसा की। सिवाने के विजित किले का नाम खैराबाद रखा गया। संभवतः इमामुलमुल्क मुल्तानी के समझाने के कारण इस युद्ध में कान्हड़-दे ने सातल-दे की कोई सहायता नहीं की होगी। क्योंकि यदि कान्हड़-दे सहायता करता तो नाहर मलिक के समान शायद अल्लाउद्दीन को भी हार का ही मुंह देखना पड़ता। पद्मनाभ के अनुसार कान्हड़-दे के इस अक्षम्य कृत्य के लिए सातल दे की पत्नियों के उपालंभ भेजते हुए कहलवाया है—

राणी वात विमासी घणी।
लिष्या लेष कान्हड़-दे भणी॥

× × ×

इस्यू कहिउं अम्ह वीतू जेह।
हवइ वीतस्यइ कालि तम्ह तेह॥

सिवाना को जीतकर अल्लाउद्दीन स्वयं तो दिल्ली लौट गया, किन्तु उसने अपने सेनापतियों को शेष मारवाड फतह करने की आज्ञा दी। सैनिकों के एक दल ने बाड़मेर को जीता और फिर दक्षिण की ओर मुड़कर उन्होंने सत्यपुर या सांचोर में स्थित महावीर के प्राचीन मंदिर को तोड़ डाला। इसी धर्मोन्माद में उन्होंने भीनमाल संतृक पौराणिक नगर को भी जला डाला जो वैदिक अध्ययन का महानतम केन्द्र था। वहाँ उसने हजारों ब्राह्मणों को बंदी बनाया। इन समाचारों से कान्हड़-दे न केवल दुखी हुआ, अपितु क्रुद्ध भी हुआ। परिणामतः कान्हड़-दे की सेना ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए राजस्थान के समस्त राजाओं को ललकारा। शीघ्र ही कान्हड़-दे के नेतृत्व में भीनमाल को लूटने वाले मुस्लिम सैनिकों की टोली मार डाली गयी। रेवती (रेवत) एवं धानसा के मध्य दोनों सेनाएं आपस में भिड़ीं। परिणामतः कान्हड़-दे की सेना ने मुस्लिम सेना को खुड़ाला तक सरपट दौड़ाया गया। राजपूतों के संगठित साहस से मुसलमानों की सैन्य-सामग्री, हाथी-घोड़े और सैनिक पकड़ लिये गये। चंद घंटों में ही राजपूत पूर्णतः विजयी हो जाते, यदि मलिक नेब का दल, जो शिकार के निमित्त कहीं दूर गया हुआ था, अतः राजपूतों की पकड़ से बाहर था, को भी पकड़ लिया जाता। लेकिन होनी को कुछ और ही होना स्वीकार था। दो

देवडा प्रधान—जेता और महीपा — जो कि कान्हड़-दे के प्रधान सेनापति थे, भिन्नमाल विजय के पश्चात् लूट के माल और सैनिकों के साथ जालोर लौट आये । संभवतः वे अपने स्वामी को तुरन्त इस भारी सफलता की बधाई देना चाहते थे। किन्तु तीन वैसे ही पराक्रमी सेनानायक— शोभित का पुत्र साल्ह, लखन सेभटा और अजयसी मोल्हण ने हजारों राजपूतों के साथ युद्ध भूमि में ही रहना तय किया । अमावस्या का दिन होने के कारण धार्मिक भावना के वशीभूत वे सहज में ही विजय पाने की उत्फुल्लता में मगन होकर अपने हथियार उतारकर नहाने लगे । उनमें से ही किसी ने उत्सुकतावश मुसलमानों के नगारों को बजा लिया । यह असावधानी और आवश्यकता से अधिक आत्म-विश्वास उनके लिए मूर्खतापूर्ण सिद्ध हुआ । उन्हें इस कृत्य के गंभीर परिणामों की तनिक भी भनक नहीं थी । हुआ यह कि मलिक नेब जो शिकार से अपने शिविर की ओर लौट रहा था, ने सोचा कि शायद उसे बुलाने के लिए ये नगारे बजाये जा रहे हैं और वह तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचा, जहाँ नगारे बजाये जा रहे थे । वहाँ उसने मुस्लिम शिविरों को ध्वस्त पाया एवं असंख्य मुसलमान सैनिकों को मरा हुआ पाया तथा समीप ही तालाब में उसने सैकड़ों शत्रुओं को जल-क्रीड़ा का आनन्द मनाते हुए देखा । मलिक नेब ने उन सब नहाते हुए सैनिकों को घेर लिया और मार डाला । जीती बाजी को इस तरह हारने का समाचार कान्हड़-दे तक पहुँचाने के लिए उनमें से एक भी हिन्दू सैनिक जीवित नहीं बचा ।

अगले सात दिनों तक वीरमदे और मालदे ने घातक संघर्ष किया । उन्होंने मेड़ता के समीप ही मोकलाना में अल्लाउद्दीन के सेनापति शम्सखान और उसकी पत्नी, जो संभवतः खलजी की पुत्री ही थी, को उन्होंने पकड़ लिया । यह वस्तुतः हिन्दुओं की भारी सफलता थी, लेकिन उनका यह साहसिक कृत्य अल्लाउद्दीन को पुनः जालोर पर आक्रमण करने का साहसिक निमन्त्रण भी था । पूर्वापेक्षा अधिक साधन-सामग्री से युक्त एवं अधिक शक्तिशाली सेना ने सन् 1310 ईस्वी में जालौर पर आक्रमण किया । कान्हड़-दे ने मालदे के नेतृत्व में वाडी तथा वीरमदे ने नेतृत्व में भाद्राजून को मुख्यावास बनाकर मुकाबला करने के लिए अपनी सेना भेजी, लेकिन इस बार खलजी की सेना का नेतृत्व सर्वाधिक योग्य, सर्वाधिक शक्तिशाली, सशक्त सेनापति कमालुद्दीन गुर्ग कर रहा था । वह अत्यन्त चालाक और निपुण सेनापति था । वह बहुत दूर तक स्थानीय लोगों से निजी एवं प्रगाढ़ मैत्रीपूर्ण संपर्क बनाये रखते चलता था तथा राजपूतों की युद्ध नीति एवं मर्यादाओं से भी सर्वथा परिचित था ।

कमालुद्दीन गुर्ग के भीषण एवं योजनाबद्ध आक्रमण के कारण कान्हड़-दे ने माल-दे और वीरम दे को पुनः जालोर बुलवाया और तब अकेले माल दे को ही खलजी के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए सु-दूर आमेर भेज दिया। उसने वीरम-दे को अपनी सहायता के लिए अपने समीप जालौर में ही रखा । कमालुद्दीन ने जालौर के किले को चारों ओर से घेर लिया और किले में रसद ले जाने के रास्तों को रोक लिया । उसके लिए

दिल्ली से मनचाही सेना एवं रसद निरन्तर आती रही। अल्लाउद्दीन ने माल-दे को बनादरा में ही रोके रखा। इस समय कान्हड़-दे का विजयपूर्ण कार्य यह रहा कि माल-दे ने खलजी की एक चौकी उदलपुर पर अपना कब्जा कर उस पर जालोर का झण्डा फहरा लिया। इधर, जालोर के किले के भीतर के हालात बिगड़ गये थे। तालाब सूख गये थे। खाद्य सामग्री के आने का कोई रास्ता नहीं बचा था। कान्हड़-दे यह सोच ही रहा था कि इस स्थिति से कैसे निपटा जाय, पद्मनाभ के अनुसार जालौर के विभिन्न व्यवसायियों ने युद्ध जारी रखने के लिये अपने राजा को जी-खोलकर सहायता देना स्वीकार किया। उधर हार मानकर शायद मलिक नेब भी घेरा तोड़ने का मानस बना चुका था, किन्तु कान्हड़-दे के एक धोखेबाज सेनापति बीका सेजवाल ने जालौर का राज्य पाने के लोभ में सुल्तान के सेनापति को जालौर के दुर्ग का गुप्त रास्ता बता दिया और धोखे से खलजी की सेना को जालौर के दुर्ग के भीतर प्रवेश करवा दिया। कान्हड़-दे उस ओर से पूर्णतः बेखबर था। किले में और किले के बाहर से भी सल्तनत के सैनिकों ने भीषण आक्रमण किया एवं बलपूर्वक किले का मुख्य द्वार खोल दिया। कान्हड़-दे के समक्ष खुला युद्ध करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं बचा था। सल्तनत की विशाल सेना से जूझते हुए सारे राजपूत मारे गये, स्त्रियों ने जौहर किया। अपने ही गढ़ में, इस डर से कि वे शत्रु के हाथ नहीं जा पाएँ, राजपूतों ने अपने ही घोड़ों को काट डाला और धन को जलाशयों में डाल दिया। भीषण युद्ध के पश्चात् कान्हड़-दे अदृश्य हो गया। तदुपरान्त लगभग चार घंटे तक लड़कर उसका पुत्र वीरमदे भी मारा गया। इस प्रकार अपने ही लोगों के द्वारा धोखा दिये जाने के कारण कान्हड़-दे की भारी पराजय हुई। पद्मनाभ के अनुसार विक्रम संवत 1368 वैशाख शुक्ल पंचमी, बुधवार के दिन चौहानों को परास्त कर अल्लाउद्दीन ने जालौर के किले को फतह किया।

पद्मनाभ द्वारा उल्लेखित उक्त समस्त घटनाएँ कमोबेश रूप से चौहान साम्राज्यों के अन्वेषक आधुनिक इतिहासकारों ने यथा तथ्य स्वीकार की हैं। इस प्रकार कान्हड़-दे प्रबन्ध अपने समय के ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुरूप होने के कारण मात्र सरस प्रबन्ध काव्य ही नहीं, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज भी है।

उद्धरण

पवाडू

वडउ वीर विष्यात वदीतउ महिमुंद साहनु केडु।
सूर धीर अनइ सपराणु पातसाहि तव तेडु।।

अलूषान बलवंतउ बंदउ तास दीयुं फुरमाण।
गूजराति ऊपरि दल नूंध्या, बीडउं द्यइ सुरताण।।

माधव मुहतउ साथि मोकल्यउ पोसातु परधान।
मोटा मलिक मीर मेलावि दीधा षोजा षान।।

अलावदीन पातिसाह मोटउ, कान्हडदे चहूआण।
गढ जालहुरि हूउ गढरोहउ, ते हूं करूं वषाण।।

गूजराति सोरठ सोमईया वाहरि विसमूं वीतूं।
भिडकिमाड राउलि हठ कीधउ, अलूषान दल जीतूं।।

डहिली दोर· साबाण सिराचा कटक तणां सिणगार।
घडीयाजोणी सांढि पल्हाणी पूठि परठ्या भार।।

कांटइं घणा घूघरा बाजइ, रइबारी असवार।
पहिलइ टमकि पेसरउ चाल्यू, घडीय न लाई वार।।

फारकभाथी अनइ हबसी, बीहामणा बुंगाल।
पाला पलइ पटायत काहर, भोई नई बलबाल।।

रांध्यां धान चालता षाइ, भटीआरा तबाष।
चाल्यां कटक पेसरा पूठि, मांहि मेछना लाष।।

मदि माता मयगल सिणगार्या, पूठि चड्या पूंतार।
लीधी पाषर नइ कठपंजर, घंटा रणझणकार।।

ऊपरि चड्या न अंकुस मानइ, एहवा गज रोसाल।
सबे सारसी करतां चालइ, जेहवा परबतमाल।।

घोडा तणी फोज जूजूई, तेह न लाभइ पार।
ऊवट वाटि ऊपड्या चालइ, षान तणा तोषार ।।

बरगां ढोल नफेरी बाजइ, काहल नइ नीसाण।
जिहां जिहां झाझा षड नइ पाणी, तिहां दियइ मेल्हाण।।

आगलि थिका कुदाला चालइ, भली करेवा वाट ।
आरहिडा पाहण घण भांजी कीधउ माधवि षाट ।।

आगलि थिकां वागडू साविज़ वेडइं नाठां जाइ।
विसमी भूमि लेई देसाउत, चिहूं दिसि धाडां धाइ।।

दीधी वाट समरसी राउलि, आव्यां कटक बिनास।
गूजराति बूंबडिया पहुता, ततषिण पडियउ त्रास।।

ऊडी षेह थयूं अंधारूं, गयणि न सूझइ भाण।
चाली दल मुहडासइ आव्यां, ढमढमीया नीसाण ।।

आव्या सुणी म्लेछ मूछाला, रणि राउतवट कीधी ।
बतड भणइ पहिला घाउ लेसूं, अन्नप्रतन्या लीधी ।।

आगइ अह्म वरांसउ वीतउ हिवडां छल नवि छांडूं।
असपतिना दल साह्मउ चाल्यउ, लेई ऊघाडउं षांडूं।।

दीठा तुरक रह्या रिण थोभी, पहिलूं कामा सारइ।
चड्यउ रोसि रिण पेरण मांडइ, मारी माग दिवारइ।।

घडी बिच्यारि घणउं दल थोभ्यउं वीर वावरइ लोह।
तुरक बचा मूंगल करकटीया, ऊपरि पड्या समोह ।।

मारी म्लेच्छ पडंतउ दीठउ, बतड वषाणिउ षानि ।
जयजयकार हूउ सरगापुरि बइसी गयउ विमानि ।।

धर्‍यां बांद मुहुडासूं भागूं, गामे घाली लाइ।
गामि गामि लूसइ लूटायत, ब्रूडी धाडां धाइ॥

भागा देस काहानम चरोत्तर, बावननइ षोडार।
गूजरातिनउ षोषरउ भाथउ, अजीय न आवइ पार॥

चड्यां कटक दंडाहि दाहोत्तर, धाणधार धंधोलि।
ऊडी वीवी वाउसू आव्या, पाटणि दीधी पोलि॥

दीधां रषत जई दरवाजइ, सज्ज थया झूझार।
माधव मुहतउ आगलि कीधउ, जाणइ मागनिसार॥

भेल्यउ नगर रड्या गढ थोभी, साहामा तीर विछूटइ।
माधव भणइ कर्ण जा नासी, कांइ मरइ अणषूटइ॥

पाडी षांडि कर्ण राउ नाठउ, पाली जाइ राणी।
पाए नवी डाभसी षूचइ, रहीय न पीयइ पाणी॥

किस्या रूषफल राउ अवधारउ, राणी मनि संदेह।
बीलां बोर कइर इंगोरां, माधवनां फल एह॥

नाठउ कर्ण पछइ गढ भेल्यउ, भर्‍या लीया भंडार।
अलूषानि आवी छोडाव्या, वालि तणा तोषार॥

एहवी वात हूई नवि होसइ, अणहलपुरह मझारि।
जीणइ ठामि हूंता देहरासर, बांगि दीयइ सिल्लारि॥

अलूषानि पाटणगढ भेल्यउ, पूठइ कर्‍यउं वषाण।
अलावद्दीन पतिसाह केरी, तु वरतावी आण॥

भणी कटक ऊपड्यां असाउलि, गढ मांहि मेल्हिउं थाणउं।
गूजराति मांहि गडअडइ, तहीय लगइ तुरकाणउं॥

आसाउलि धुलकूं षंभाइति, सूरति नइ रानेर।
बीजां नगर केतलां कहियइ, कांपइ चांपानेर॥

तडीयां नगर सवे धंधोल्यां, दीठा सायरपूर।
सोनां रूपां अनइ सावटू, काचां लीयां कपूर।।

मारइ देस, फिरइ घण फोजइ, अनइ लूस्यइ धान।
वालइ ठोरधार सपराणा, माणस -झालइ बान।।

गूजराति मांहि ताषति कीधी, सहूय समेटी लीधउं।
वाजी सान षान सोमईया भणी पीआणउं दीधउं।।

सोरठ मांहि मेगलपुर महूआ, वली ऊना नइ दाठा।
पडी ढाक नीसाण ध्रसूक्या, लोक दहोदिसि नाठा।।

राषइ जीव दीव मांहि पइठा, वरतइ हालकंलोल।
तुरकां पासि दैव म म पाडिसि, वरि घाले द्रहबोल।।

हूई हाक कोलाहल सुणीइ, दीसइ धूम विकराल।
पडइ बूबरिण काहल बाजइ, जाणे कोप्यउ काल।।

षारिक द्राष नालीयर नीलां, फोफल अनइ षिजूरां।
वारू वाड सेलडी केरा, वाडीनां केलिहरां।।

आदां सूरण नइ पींडालू, वली पोसातां पान।
कटक मांहि जु ताषति आवइ, कोई न षाइ धान।।

राग रामगिरी

बे अबला बोलइ इस्यूं जे असुर असंभम कीध।
चौद लोक स्वामी ग्रह्या ते प्राणि पेषंतां लीध।।

द्रुपद

बिलवइ बे सती कीजइ कंकण भंग ।
उछइ नीरि जिम माछली तिम विरह दहइ अम्ह अंग ।।
बिलवई बे सती ।।

जि को बंधन छोडावइ स्वामी तेह पातक छंडइ पूठि ।
वेदवचन अम्हे सांभल्यां तूं कान्हडदे ऊठि ।।
बिलवइ बे सती ।।

छोडवि स्वामी अम्ह तणउं तूं मूंगल म्लेछ विहंडि ।
कीरति लइ कान्हड घणी तुझ नाम हूसइ नव षंडि ।।
बिलवइ बे सती ।।

राग धान्यासी, धुल

मांडवि मिलिय सुहासणी, सषी उढणि नवरंग घाट कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

हियडइ हरष अपार कि, सषी बोलइ मालदे वीर कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।। आंचली ।।

हार निगोदर बहिरषा, सषी नेउर रणझणकार कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

त्राट करू करि कनकमइ, सषी मोतीयडे पूरु चुक कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

तिलक करूं कुंकुम तणां, सषी तिणि रंगि राउ वधावु कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

असुर दली घरि आवीउ, सषी शंकर छोडीउ बंध कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

कान्हडदे जीवे घणूं, सषी बेलिइ मालदे वीर कि ।।
जीतउं सहीय वधामणूं ए ।।

चउपई

थयुं प्रभात तव तुरणी नारि, गई सरोवरि पाणीहारि।
आगइ आछउं हूतुं, निवर्ण दीठउं पाणी लोहीवर्ण ।।

गाइ तणां मस्तक जलि तरइ, कांठइ कोइ न दांतण करइ।
पाणी मांहि दोष एवडउ, पाणीहारि भरइ नवि घडउ ।।

पालि आवी जोइ लोक, हईइ आणइ अतिइ घण सोक ।
पाणी विश्व तणउ आधार, पाणी सविहुं जीवाडणहार ।।

जे हुइ मोटा राणा राइ, तेहे जल विण षिण न रहाइ ।
सांतल इसूं विमासी करी, तेडी पूछी अंतेउरी ।।

राणी भणइ विमासउ किस्यूं, अम्हे सवे जमहरि पइसिस्यूं ।
हीदू तणइ मानीइ गाइ, तेह तणउं लोही जल माहि ।।

जीवतव्यनी आस्या टली, ए पाणी नही पीजइ पली ।
राणी वात विमासी घणी, लिष्या लेष कान्हडदे भणी ।।

चाहूआणनउं गिरूउं राज, रूडउं अम्हे भवाडिउं आज ।
राणी बोल इसउ ऊचरिउ, इम जाणेज्यो जमहर करिउ ।।

कान्हडदेनी घरणी हती, तेह भणी लिषी वीनती ।
ऊमादे नइ कमलादेवि, जइतलदे नइ भावलदेवि ।।

इस्यूं कहिउं अम्ह वीतू जेह, हवइ वीतस्यइ कालि तह्म तेह।
अम्हस्यूं प्रीति आणेज्यो घणी, आणइ जमारइ मोकलावणी ।।

इसूं कही नवि लाई वार, राणी सवि कस्या सिणगार ।
चंदन काठ आणीउ घणउ, तिहां परिवार मिलिउ तेह तणउं ।।

साहस प्रभावि एतली आहि, राणी पइठी जमहर माहि ।
राम राम वाणी उच्चरइ, सजन लोक सवि आसूं षिरइ ।।

दूहा

जल विण को जीवइ नही, जल जीवन जग मांहि ।
पद्मनाभ पंडित भणइ जल विण षिण न रहाइ ।।

राग सिंधूडउ

सात वरसनइ माजनइ, गोरीडां दल घण घाइ ।
गढपति गढरोहइ पडिउ, चउपटमल्ल चहूआण माहि ।।

द्रुपद

समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ।।
कुंयरि कोडाली बेटडी, वली मेलावउ कवण वलामणि।
भाईलि भेद देषाडीउ, सरोवरि करिउ विणास ।
एह पाणी नवि पीजीइ, असुरां हवि पूगी आस ।
समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ।।

जल विण षिण किम जीवीइ, जे जल जीवन जग माहि ।
जिणि दिनि जल नवि पामीइ, तिणि दिनि देहडी कुरूमाइ ।।
समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ।।

पिंड प्राण हुइ प्राहुणा, दोइ दिवस पांच कइ सात ।
सांतल कहइ सुणि सुंदरी, हिव हुई ति सचारचारि वात ।।
समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ।।

सांतल तणी अंतेउरी, नारिगंदे निरवाणि ।
पावकि प्रेमादे चडी, सइं दलि सुणीउं सुरताणि ।।
समीयाणे सुरताणी साहण आवीयां ए ।।

राग शिषरी

एक पनुती हो बगलडी जी, तेहचा प्रेम अपार ।
प्रिय पोषइ पावसि चडी जी, सुष लीजइ संसारि ।।

ध्रुपद

कइ मइ मनमथ दूहविउ जी, कइ हूं निरगुण नारि ।
प्रीयु परदेसणि वीनवइ जी, आपइ आप संभारि ।।
कइ मइ मनमथ दूहविउ जी ।।

दिवस दोहिलइ नीगमूं जी रयणि घणेरी थाइ ।
विरह वेदन माहरी कहिनि कहूं जी, प्रीयु विण रहिणु न जाइ ।।
कइ मइ मनमथ दूहविउ जी ।।

जउ जलहीणी माछली जी, जीवइ नही जग मांहि ।
कंत विहूणी कामिनी जी, तिम तिम षीणी थाइ ।।
कइ मइ मनमथ दूहविउ जी ।।

अथ भडाउली

श्रीनगर जालहूर तणी रचना । गढ-मढ मंदिर पोलि पगार । अट्टालीयां मालीयां टोडडे त्रिकलसां गगनचुंबित कोसीसां । सातषणा धवलगृह । रम्य प्रवेश ।

सूकडीया गवाक्ष । मलयागिरी जाली । कृष्णागिरी थांभली । मणिबद्ध काचबद्ध भूमि । उराउरी वलभी । पगथीयारां चउकीसर चूनालूआं । शतभूमिका सहस्रभूमिका सभानी रचना ।

महाराजाधिराज श्री कान्हडदे सभा पूरी बइठउ छइ । सिंहासनि पाउ परठिउ छइ । मेघवना उलच बांध्या छइ । परीयछ ढली छइ । केतकीना गंध गहगहीया छइ । सोंरभनां सोड सांचरिया छइ । सभा मांहि सेरी मेल्हाणी छइ । जाइ वेली वालउ पाडलना परिमल पंचवर्ण पुष्फजातिना प्रकर पाथरिया छइ । गुल्लालना गंध गहगहीया छइ । पडीयां कपूर पाए चंपाइ छइ । घोडा वहीआलइ घालीया छइ । हाथीयानी सारसी आगलि कानि पडिउं कांइ नथी संभलातुं । पंचशब्द वाजित्र बाजइ छइ । गल्यां पीतल रतांजणी तणां पषावज धौंकार करइ छइ । नृत्यकी पात्र नृत्य करइ छइ । ततवितत घनशुषिर पंचवर्ण वाजित्र वाजइ छइ । पंचवर्ण छत्र धरियां छइ । चामर व्यिंजन बिहुं पाषि हुइ छइ । अमात्य प्रधान सामंत मंडलीक मुकुटवर्द्धन श्रीगरणा वइगरणा धर्मादिकरणा मसाहणी टावरी बारहीया पुरुष वइठा छइ ।

पवाडू

झालर वावि मांहि अतेउरि लेई आभरण नाषइ ।
पुरसउ पाणी मांहि बोलाविउ, गढ मांहि कांई न राषइ ।।

माणिक मोती हीरा आणी, सोनां रूपां सार ।
ऊंडइ नीरि अणावी राउलि बोलाव्या भंडार ।।

चाहूआण कुलि जे धोंरीधर, जाणइ राजविवेक ।
तेडावी वीरमदे कुंअर, सिरि कीधउ अभिषेक ।।

लागउ पाय मांजीयां आंसू जणणी दीइ आसीस ।
वंशि अम्हारइ तुं अजरामर, प्रतिपे कोडि वरीस ।।

चंदन काठ अगर नइ तुलसी, बीली आमली आणी ।
करी सनान देव आदितनइ अर्घ दीइ सवि राणी ।।

हाहाकार हूउ तिणि वेलां राणी जमहरि पइसइ ।
सरलइ सादि सहू हरि बोलइ, जमहर इणि परि दीसइ ।।

राग नूंछी देसाष

बांधव पुत्र कलत्र धन यौवन, जाणे मायाजाल ।
जिणि दिनि हुइ दैव ऊफराठउ, तिणि दिनि सहूइ आल ।।

द्रुपद

हा हा दैव दोस कहि दीजइ, दीसइ किस्युं विहाण ।
नयणे अजी रूहिर नवि आवइ, हो हीयडां थ्यां पाषाण ।।
हा हा दैव दोस कहि दीजइ ।।

पंनरसइ चउरासी जमहर गढ जालोर नवेसि ।
लोक सवे अंतेउर पूठि, हो जमहरि करइ प्रवेस ।।
हा हा दैव दोस कहि दीजइ ।।

विषम कर्मगति किम टलइ, हो मनि विषवाद म आणि ।
भगति मुगति दानेश्वर सुणीइ, समरि न सारंगपाणि ।।
हा हा दैव दोस कहि दीजइ ।।

राग छाहुली

रूपइ सलूणडी, सवे साहेलडी
बेलडी रहीअ रा निहालती ए ।।

टोडडे आवीय, आंसूडां रोहावीय,
जालउर परबत वधावीउ ए ।।

सुंदरी सोहामणी, ए ्बतनइ कहइ घणी,
आणइ जमारइ मोकलावणी ए ।।

सर्वगुणजाणनइ, वंशि वली भाणनइ,
वीर अवतरज्यो चहूआणनइ ए ।।
वली रलीआमणूं, अरधासन वीरम तणउं,
पामिस्यूं सोनिगिरनूं बइसणउं ए ।।

राग मालपसू सामेरी

पूरव प्रेम संभारीउ, आंसूडे भीनउ हार जी ।
गुण फीटी अवगुण थया, अम्ह कहि कारणि सिणगार जी ।।

द्रुपद

सगुण सलूणा राउल रूसणूं किस्यूं ।
हूं ता प्रेमगहेलडी, तूं सोनिगिरउ चहूआण जी ।।
सगुण सलूणा राउत रूसणूं किस्यूं ।।

तूं तां प्राणव माहरउ, हूं ताहरडी घरि नारि जी ।
जनम एक अंतरि गयउ, तो नेहलु म वीसारि जी ।।
सगुण सलूणा राउत रूसणूं किस्यूं ।।

हीयडलूं घणूं गहिबरिउं, तुं सुणि न अम्हारा नाथ जी ।
तुं अमरापुरि संचरयउ, हुं मरणि न मेल्हुं साथ जी ।।
सगुण सलूणा राउत रूसणूं किस्यूं ।।

चउपई

वीसलनगरउ नागर एक, पदमनाभ कवि पुण्यविवेक ।
एहवुं बिरद आदरइ अनी, लहइ बुद्धि कविजनरंजनी ।।

माइ भारती तणइ पसाइ, अक्षरबंध बुद्धिरस थाइ ।
अषइराज सीषामण सरी, पद्मनाभ कीरति विस्तरी ।।

सांभलतां सरीर उल्हसइ, चउपई बंध इसी इग्यारसइ ।
च्यारि षंड जिस्यां नवनीत, दूहा चउपई मधुरां गीत ।।

पंचतालीसउ पूठि वरीस, मास मागसिर पूनिम दीस ।
संवत पंनर बारोतरउ, तिणि दिनि सोमवार विस्तरु ।।

जालहुर गढ उत्तम ठाउ, राउल कान्ह मालदे राउ ।-
पद्मनाभ मति आणी नवी, तेह तणी कीरति वर्णवी ।।

एकचित्ति जे नर सांभलइ, तेह तणां सवि दुकृत टलइ ।
जे फल लाभइ दीधइ दानि, जेब फल गंगा तणइ सनानि ।।

वे फल हुइ तप कीधइ सदा, जे फल हुइ दर्शनि नरबदा ।
जे फल सत्य वचन प्रमाण, जे फल हुइ सांभलीइ पुराण ।।

जे फल पामइ तपसी सवे, जे फल हुइ बांद छोडवे ।
जे फल पामइ कीधइ यागि, जे फल भेट्यां हुइ प्रियागि ।।

जे फल पामइ गंगाद्वारि, जे फल हुइ भेटि केदारि ।
जे फल हुइ विद्या उद्धरी, जे फल भेट्यां गोदावरी ।।

जे फल नारायण दीठइ नेत्रि, जे फल हुइ दानि कुरुषेत्रि ।
जे फल पामइ साहसि सती, जे फल हुइ नाह्यां गोमती ।।

जे फल लहइ द्वारिका छमासि, जे फल भेट्यां हुइ प्रभासि ।
जे फल हुइ मुगतिपुरि साति, रामनाम उच्चरइ प्रभाति ।।
कान्हडचरिय जि को नर भणइ, एकचित्ति जि को नर सुणइ ।
तीरथफल बोल्युं जेतलूं, पामइ पुण्य सवे तेतलूं ।।

प्रेम संगि सवि सज्जन मिलइ, आस मनोरथ सहूइ फलइ ।
प्राकृतबंध कवित मति करी, कलियुगि कथा अभय विस्तारी ।।

चाहूआणकुलि कीरति घणी, पूगउ आस सविकहि तणी ।
पदमनाभ पंडित मति कही, चउथा षंड समाप्ति हूई ।।

□ □ □